आचार्य रामचंद्र शुक्ल : पुनर्मूल्यांकन

सम्पादक

प्रकाश आतुर



राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर

प्रथम प्रकाशन 1984 ई
मूल्य सोलह रुपया मात्र
मुद्रक मुद्रायन,
सुन्दरवास, उदयपुर-313001
प्रकाशक राजस्थान साहित्य अकादमी,
हिरन मगरी सेक्टर 4
उदयपुर-313001 (राज.)

ACHARYA RAMCHANDRA SHUKLA PUNARMULYANKAN
Edited by Dr PRAKASH ATUR Rs 16/ only

प्रकाशकीय

छब्ध प्रतिष्ठ समालोचक, निब धकार तथा साहित्य-इतिहास-कार ग्राचाय रामच द्र शुक्ल का हि दी साहित्य मे विशिष्ट स्थान है ग्राचाय शुक्ल ने ही सवप्रथम वैज्ञानिक ग्रध्ययन ग्राधारित हि दी साहित्य के इतिहास की प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की है शुक्लजी की मा यताएँ, विवेचन ग्रौर निष्कप ग्राज भी ग्राधार एव मागदशक सिद्धा त के रूप मे प्रतिष्ठित हैं

ग्राचाय शुक्ल साहित्य मे लोकमगल के पक्षधर हैं शुक्लजी की दृष्टि म व्यवहार जगत का मगल ही साध्य है ग्रौर साहित्य जनता की चित्तवृत्ति का सच्चा प्रतिबिम्ब है उ होने भारतीय साहित्यिक सस्कृति की नीव सशक्त की

हि दी जगत यह वष 'ग्राचाय रामच द्र शुक्ल ज मशती वष के रूप मे मना रहा है, उ हे स्मरण करत हुए उनके लेखन को मूल्याकित कर रहा है राजस्थान साहित्य ग्रकादमी की मासिकी 'मधुमती' ने ग्राचाय रामच द्र शुक्ल पर विशिष्ट सामग्री का प्रकाशन किया है, जिसे पुस्तकाकार 'रामच द्र शुक्ल पुनमू ल्याकन' के रूप में प्रस्तुत है ग्रकादमी की यह शुक्लजी को विनम्र श्रद्धाजलि है

ग्राशा है सुधि जन इस प्रयास का स्वागत करेंगे

उदयपुर
दि 22 नव 84 ई

लक्ष्मीनारायण न दवाना,
सचिव

निवेदन

इस वर्ष समूचा हिन्दी जगत, आलोचक एव साहित्य के इतिहासकार स्व रामचन्द्र शुक्ल की जन्मशती मना रहा है देश भर मे शुक्लजी को जन्मशती के अवसर पर पुन चर्चित, व्याख्यायित, मूल्याकित किया जा रहा है इसी सन्दर्भ मे राजस्थान साहित्य अकादमी की मासिकी मधुमती' मे स्व आचार्य शुक्ल पर प्रकाशित विशेष सामग्री मे उनके योगदान और विचारो का पुनर्मूल्याकन करने का प्रयत्न किया गया वही सामग्री अब स्वतन्त्र पुस्तक के रूप म प्रस्तुत की जा रही है

स्व शुक्ल जी के योगदान को समय समय पर रेखाकित किया जाता रहा है और उनके निधन के इतने वर्षों बाद भी उनके द्वारा स्थापित मान्यताएँ, निष्कर्ष और विश्लेषण साहित्य के अध्येताओ के लिये मार्गदर्शक-सिद्धान्तो का महत्व रखते हैं आचार्य शुक्ल ने ही सर्वप्रथम वैज्ञानिक विश्लेषण को आधार बनाते हुए हिन्दी साहित्य के इतिहास की प्रामाणिक सामग्री प्रस्तुत की उनके द्वारा किये गये विभिन्न युगो के नामकरण पर बाद मे सशोधन, परिमार्जन आलोचन भी हुआ किन्तु आज भी उनके द्वारा प्रदत्त नामकरण ऐतिहासिक महत्व के हैं समीक्षा और आलोचना के क्षेत्र मे तो शुक्ल जी ने अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा नये क्षितिज निर्मित किये काव्य मे लोकमगल के समर्थक शुक्ल जी न भारतीय काव्यशास्त्र मे रस-सिद्धान्त की जो समीक्षा की उसने चिन्तन के सूत्रों को नई दिशा दी डॉ नवलकिशोर का यह कथन बहुत सही है कि वे बुनियादी तौर पर हमारे सांस्कृतिक पुनर्जागरण की उदारतावादी दृष्टि से प्रेरित थे एक ओर तो वे संस्कृत की काव्यशास्त्रीय परम्परा को नये

परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते थे और साथ ही पश्चिमी आलोचकों के विचारों को आत्मसात कर उनसे हिन्दी के पाठकों को परिचित भी कराते रहे थे वस्तुतः आलोचना के क्षेत्र में शुक्लजी युग प्रवर्तक के रूप में सम्माननीय हैं पश्चिमी और भारतीय काव्यशास्त्रीय परम्परा के साथ साथ इतिहास दर्शन, विज्ञान, मनोविज्ञान सम्बन्धी अधुनातन विचारों का प्रभाव उनके चिन्तन पर पड़ा है और इसीलिये उनका समीक्षात्मक लक्ष्य केवल साहित्यिक ही नहीं है अपितु उसमें जीवन दृष्टि का व्यापक फलाव भी है

जिन विद्वान मित्रों ने मेरे जल्दी में किये गये अनुरोध को स्वीकारा और सामग्री भिजवाई उनका मैं आभारी हूँ डा शम्भूनाथ ने शुक्ल जी के युग का विश्लेषण करते हुए जनवादी दृष्टि से शुक्ल जी का मूल्यांकन किया है और डा जगदीश शर्मा ने उनकी सौन्दर्यशास्त्रीय अवधारणाओं को विस्तार से व्याख्यायित किया है आचार्य राम मूर्ति त्रिपाठी ने समालोचक के रूप में शुक्ल जी के योगदान को रेखांकित किया है और रामजी तिवारी ने स्व शुक्ल जी की लोक मंगलवादी काव्य धारणा व परवर्ती काव्य चिन्तन में बहुआयामी विकास पर प्रकाश डाला है डॉ छोटेलाल शर्मा का रेखाचित्र शुक्ल जी के व्यक्तित्व व चरित्र के अनेक अनछुए पहलुओं को उजागर करता है

आचार्य शुक्ल पर आयोजित परिचर्चा में आयोजक श्री सूरज पालीवाल ने जिन प्रश्नों को उठाया है उनसे शुक्ल जी की इतिहास सम्बंधी अवधारणाओं पर अलग-अलग कोण से विचार प्रस्तुत करने के साथ प्रसंगांतर से शुक्ल जी के योगदान और हिन्दी आलोचना और अन्य आलोचकों के सम्बंध में भी अच्छी चर्चा हो गई है डा नवलकिशोर, डा मनेजर पाडेय, डा चंचल चौहान डा हरदयाल, डा जीवनसिंह और डा कुंवर पालसिंह के प्रति हम आभारी हैं जिन्होंने इस परिचर्चा में भाग लेकर एक ही प्रश्न को अलग अलग नजरिये से समझने और परखने में सहयोग दिया भाई सूरज पालीवाल ने परिचर्चा की प्रश्नावली तैयार करने तथा सामग्री संकलित करने में जो सहयोग दिया उसके प्रति भी हार्दिक आभार, आशा है, राजस्थान साहित्य अकादमी का यह विनम्र प्रयास आचार्य शुक्ल को श्रद्धांजलि एवं उन्हें पुनर्मूल्यांकित करने के प्रयास के रूप में स्वीकारा जायगा

विनीत

प्रकाश आतुर

अध्यक्ष

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : पुनर्मूल्यांकन

क्रम

लेख	रामचन्द्र शुक्ल का युग/शम्भुनाथ/1/आचार्य शुक्ल का सौन्दर्य शास्त्र/जगदीश शर्मा/20/हिन्दी साहित्य को आचार्य शुक्ल की देन/राममूर्ति त्रिपाठी/31/आचार्य शुक्ल का लोकमंगल और उसकी परवर्ती दिशाएं/रामजी तिवारी/37/
परिचर्चा	आचार्य शुक्ल की इतिहास दृष्टि/नवलकिशोर/47/मैनेजर पाण्डेय/49/चंचल चौहान/53/हरदयाल/56/जीवनसिंह/58/कुंवरपालसिंह/61/आयोजक–सूरज पालीवाल/
रेखाचित्र	का हो पदव तू बव बढ़रा/छोटेलाल/65/

सम्पादक

प्रकाश आतुर

शंभुनाथ

रामचंद्र शुक्ल का युग

इक्कीसवीं शताब्दी से निकलकर एक नये ऐतिहासिक दौर में प्रवेश करने के लिए आज हमारा समाज अपने तीव्र विकास के ऐसे उलझनपूर्ण मोड़ पर आ खड़ा है, जहां विज्ञान, प्रौद्योगिकी और उत्पादन के चरम संयोग के बावजूद आदमी का जीवन गहरे संकट में है इस स्थिति में जानना बहुत जरूरी है कि तब विकास की हमारी ऐतिहासिक अवधारणा क्या थी, जब यह शताब्दी अपने पिछले युगों का अंधकार भेदते हुए शुरू हो रही थी उस समय भी समाज, राजनीति और भाषा साहित्य में भीषण वैचारिक संघर्ष चल रहा था एक तरफ बौद्धिक उपनिवेशन की भौतिक शक्तियां अपने उभार पर थीं, प्रतिक्रिया में दूसरी तरफ, पुनरुत्थानवाद था इनके संघर्षण से बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक कुछ दशकों में विकास की एक नई ऐतिहासिक अवधारणा सामने आयी, जिसका सीधा सम्बन्ध उपनिवेशवाद एवं मध्ययुगीन रूढ़िवाद से संघर्षरत भारतीय जनता की वास्तविक अभिलाषाओं और जरूरतों से था

अंग्रेजी राज में परंपरागत ग्राम समाज और शिशु व्यापारिक पूंजी के विनाश से कायम पैसे की जो एक नई अर्थव्यवस्था और इस पर आधारित खास प्रकार की सभ्यता पनपी, उसे कई बुद्धिजीवियों ने अच्छा नहीं माना और उस पर अपना रोष प्रकट किया। प्रेमचन्द ने ही 'पुराना जमाना नया जमाना' (1919) में लिखा कि 'पुराने जमाने में सभ्यता का अर्थ आत्मा की सभ्यता और आचार की सभ्यता होता था। वर्तमान युग में सभ्यता का अर्थ है स्वार्थ और आडंबर। उसका नैतिक पक्ष छूट गया। पुराना जमाना अमीरों और सुल्तान का जमाना था और नया जमाना बनियों और व्यापारियों का जमाना है। इसने दौलत के पहाड़ खड़े कर दिये, दौलत की तलाश में जलथल को छानता हुआ आसमानों के छोर तक जा पहुंचा और अब सारी दुनिया उसका कार्यक्षेत्र है।' मध्ययुगीन समाज की 'जमीन' की गुरुत्वाकर्षण शक्ति समाप्त कर पैसे की अर्थव्यवस्था ने बौद्धिकता और विज्ञान की ताकत से दुनिया में साम्राज्यवाद का रूप जिस तरह धारण कर लिया, इसी ओर प्रेमचन्द ने संकेत किया।

रामचंद्र शुक्ल ने प्रेमचंद की तरह समाज और राजनीति की स्थितियों पर ज्यादा टिप्पणी नहीं की। उन्होंने भाषा और साहित्य के ऐतिहासिक विश्लेषण, संपादन, शिक्षा आदि का भिन्न कार्यक्षेत्र चुना। फिर भी ऐसा नहीं है कि भाषा और साहित्य के बारे में उनकी विचार धारा, इतिहास दर्शन, संपादन या शिक्षा दृष्टि का तद्युगीन समाज और राजनीति की घटनाओं से सीधा सम्बन्ध नहीं है। उस विस्तृत कालखंड के प्रेमचंद, प्रसाद, निराला आदि साहित्यकारों की तरह रामचंद्र शुक्ल ने भी पैसे की अर्थव्यवस्था के औपनिवेशिक विस्तार और इसके असर से सांस्कृतिक मान मूल्यों में आ रही गिरावट को बड़ी गंभीरता से लक्षित किया—'आजकल मनुष्य की सारी बातें धातु के ठीकरों पर ठहरा दी गयी हैं। सबकी टकटकी टके की ओर लगी हुई है। जो बातें पारस्परिक प्रेम की दृष्टि से, न्याय की दृष्टि से, धर्म की दृष्टि से की जाती थीं, वे भी रुपये पैसे की दृष्टि से होने लगी हैं। पैसे से राज सम्मान की प्राप्ति, विद्या की प्राप्ति और न्याय तक की प्राप्ति होती है।' (लोभ [illegible], 1921) अपने कथन को उन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में पूंजीवाद के साम्राज्यवादी विकास के संदर्भ में इस प्रकार आगे बढ़ाया—'व्यापारनीति राजनीति का प्रधान अंग हो गई है। बड़े बड़े राज्य माल की बिक्री के लिए लड़नेवाले सौदागर हो गये हैं। अब सदा एक देश दूसरे देशों का चुपचाप दबे पांव धनहरण करने की ताक में रहता है। कोई कोई देश लोभवश इतना अधिक माल तैयार करते हैं कि उसे किसी देश के गले मढ़ने की फिक्र में दिन-रात मरते रहते हैं। जब तक यह व्यापारोन्माद दूर नहीं होगा, तब तक इस पृथ्वी पर सुख शांति न होगी।'

रामचद्र शुक्ल ने अंग्रेजो के व्यापारोन्माद की विध्वसकता को औद्योगिक और बौद्धिक दृष्टि से पिछडते जा रहे भारतीय समाज के सदर्भ मे देखा प्रथम विश्वयुद्ध के दिनो मे भारतीय कारखानो को जो प्रोत्साहन मिला था, वह लडाई समाप्त हो जाने के बाद बद हो गया था बाजार मे पुन भारी पमाने पर सस्ते विदेशी माल आ जाने के कारण कई कारखान ठप्प हो चुके थे अंग्रेज व्यापारी अपना माल बेचकर देश के धन का पुन जमकर अपहरण करने लगे थे और इस उद्देश्य से पहले की भाति अपने शासन का राजनतिक इस्तेमाल किये जा रहे थे रामचद्र शुक्ल ने अंग्रेजो के व्यापारोन्माद को उपनिवेशो की आर्थिक लूट तक ही सीमित नहो किया, यह भी लक्षित किया कि इस व्यापारोन्माद का सामाजिक असर क्या पडा है, खासकर प्रेम और न्याय जैसे अपरिहाय जीवन मूल्य पर

नवजागरण की आरम्भिक पूजीवादी सभ्यता का एक मुख्य लक्षण है व्यापार और राजनीति की परस्पर निभरशीलता इसी के परिणामस्वरूप शहर अस्तित्व मे आते है व्यक्ति के सोच मे 'सारभूत बौद्धिकता', तथा निश्चित सामूहिक लक्ष्य की ओर बढते आर्थिक एव राजनतिक सगठनो क ढाचे मे 'कायपरक तकनीकी बौद्धिकता' का उदय होता है समाज मध्ययुगीन जडता से निकलकर विकास की एक नयी ऐतिहासिक मजिल की ओर बढता है व्यापारिक पूजीवाद द्वारा जीवन क सभी क्षेत्रो मे पसे की ताकत स्थापित कर लेने के बाद धम, विज्ञान, कला, दशन और सस्कृति के क्षेत्र म भी प्रगति का विराट दरवाजा खुल जाता है अधविश्वास और अबौद्धिक आवेग नियत्रित होने लगते हैं मनुष्य किसी भी चीज को स्वयसिद्ध निरपेक्ष और सपूण मानकर सतोप नही करता वह हर चीज को उस तक बुद्धि से जाचकर स्वीकार करता है, जो व्यापार और पसे की अथव्यवस्था के प्रसार की वजह स उसमे जाग्रत होती है उसम नयी रुचियां पदा होती हैं भिन्न सामाजिक वातावरण मे वह अपने नय व्यक्तिगत हितो के प्रति सावधान होता है व्यापार और पस की अथव्यवस्था के ही कारण मनुष्य जीवन के मूल्यो म गतिशीलता, बुद्धिवादी परिवतन, एक तरह स पूरी सामाजिक सरचना मे उन्नयनशील आधुनिक परिवतन घटित होते हैं व्यापार और राजनीति की परस्पर निभरशीलता के ही उत्पादक क्रम मे अतत उस उद्योगीकरण की आधारशिला भी तयार हो जाती है जो समाज को विज्ञान, प्रौद्योगिकी एव उत्पादन मे बेहतर सयोग स्थापित करने की क्षमता प्रदान करता है फिर भी सबकुछ अतत इस पर निभर करता है कि बुद्धिवादीकरण की मुख्य वाहक कौन है, कोई औपनिवेशिक शक्ति या राष्ट्रीय सामाजिक शक्ति

परिमाण मे प्रचुर होते हुए भी भारतीय व्यापारिक पूजी और मुगल शासन की राजनीति के बीच साथक परस्पर निभरशीलता पदा नहीं हो सकी थी इसलिए यहा

जो व्यापार पनपा, वह अंग्रेजों का व्यापारी माल था और इसकी छाया में जो बुद्धिजीवी-करण हुआ उसका लक्ष्य औपनिवेशिक हितों को संतुष्ट करना था। इससे समाज आगे की ओर नहीं बढ़े। अंग्रेजों ने नाना निकम्मों में भारतीय कृषि एवं कला-कौशल का विनाश करने के बाद बिजली तार, रेल, वाष्पचालित जहाज और जमींदारी तथा रयतवाड़ी व्यवस्था द्वारा भारतीय समाज के आधुनिकीकरण की जो अचेष्टा प्रारम्भ की थी उनके बारे में मार्क्स ने वेरा जसूलिच के नाम अपने एक खत के मसौदे में स्पष्ट कहा था कि 'इससे देशी लोग आगे नहीं पीछे ठेल दिये गये हैं' (1881)। ऐसा उन्होंने आधुनिकीकरण के औपनिवेशिक लक्ष्य को देखकर कहा था, यह सोचकर नहीं कि आधुनिकीकरण अपने आप में कोई बुरी चीज है। वस्तुतः यह समाज के तात्विक ढांचा तथा मानवता के विकास के लिए बहुत जरूरी है, किन्तु भारत में आधुनिकीकरण अजनतांत्रिक ढंग से और तनावहीनता में हुआ। अंग्रेजों ने भारतीय व्यापार, उद्योग और पेशे की अर्थव्यवस्था को उचित प्रोत्साहन देकर देश को उत्पादक बनाने तथा श्रमविभाजन का विकास कर सभ्यता को उन्नत रूप देने का लक्ष्य नहीं बनाया। उन्होंने सिर्फ आर्थिक लूट को अपना लक्ष्य बनाया।

दुनिया की आधुनिक व्यवस्था में भारतीय कारीगरी और उद्योग को अवनति से कैसे बचाया जाये, इस पर दो तरह के विचार थे। 'सरस्वती' के अगस्त 1900 के अंक में श्यामसुन्दर दास ने एस. जे. टेनरी का 'भारतवर्षीय शिल्पविद्या, उसकी अवनति और जीर्णोद्धार की सम्भावना' शीर्षक एक व्याख्यान उद्धृत किया, जिसमें कहा गया था—'जहां जाति के नियम इस प्रकार से धर्मानुमत हो गये हैं कि कोई पुरुष उनके अनुसार अपने बाप-दादों के व्यापार को छोड़कर दूसरे व्यवसाय में लग नहीं सकता इन शिल्प विद्यालयों का रहना व्यर्थ है। शिल्पविद्या यहां की पैतृक संपत्ति के समान है जो जाति भेद के नियमों से प्रचलित होती और रक्षित बनी रहती है।' भारत की आर्थिक परम्परा के संदर्भ में बड़े उद्योग के स्थान पर उत्पादन की छोटी आर्थिक इकाइयों की उन्नति का अपना एक खास तात्पर्य है। इस सम्बन्ध में किसी चिंता, उस वक्त खासकर एक अंग्रेज द्वारा चिंता का महत्व असंदिग्ध रूप से है। टेनरी परम्परागत भारतीय शिल्पविद्या के शौकीन थे। इंग्लैण्ड शिकागो में इनकी एक प्रदर्शनी भी आयोजित की थी, किंतु वह सोचते थे कि भारतीय शिल्पविद्या का पुराने रूप में जीर्णोद्धार हो। वह विज्ञान प्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा छोटी उत्पादन इकाइयों की भारतीय आर्थिक परंपरा के आधुनिकीकरण की जरूरत का अनुभव नहीं करते थे। श्यामसुन्दर दास ने इसकी तारीफ में अपनी टिप्पणी दी थी, 'व्याख्यान बड़ा ही लाभप्रद और शिक्षाप्रद है।' यह भारतीय शिल्प और उद्योग की विकास विरोधी दृष्टि थी।

रामचन्द्र शुक्ल में अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति कम स्वाभिमान न था। बकनन हेमिल्टन ने अपनी 'ईस्ट इन्डिया' नामक पुस्तक में जब यह सम्मति व्यक्त की

कि भारत की प्राचीन जातियां मिले हुए धस्त्र के व्यवहार से पूर्णतया अनभिज्ञ थीं, इसका प्रचार मुसलमानों के आगमन के बाद हुआ, तब रामचन्द्र शुक्ल ने इसके प्रतिवाद में प्राचीन ग्रंथों और मूर्तियों का हवाला देते हुए अपना लेख 'भारतवर्षियों का पहिरावा' (सरस्वती, दिसम्बर 1902) में जोरदार शब्दों में लिखा— जिस आधार पर यह सम्मति स्थिर की गई, वह दृढ़ नहीं प्रतीत होती' वह राष्ट्रीय विरासत को खंडित या विकृत रूप में उपस्थित करने के विरोधी थे, पर पुनरुत्थानवादियों की भांति उन्हें गौरवशाली प्राचीनता के झूले पर पुनरुत्थानवादी पेंग भरना भी पसन्द नहीं था उनकी भारतीय शिल्प और उद्योग सम्बन्धी दृष्टि विकासवादी थी, तभी वह इनकी परम्पराओं के शक्तिस्रोत का, जो उपनिवेशवादी कुचक्र में ठिठक गये थे, संधान और विकास चाहते थे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के मार्च 1910 के अंक में उन्होंने इग्लैंड में भारतीय कला कौशल में रुचि उत्पन्न करने के लिए 'इण्डियन सोसायटी' की स्थापना करनेवाले एक व्यक्ति हावल का मत छापा— मैं जिस बात पर सबसे अधिक जोर देना चाहता हूं, वह यह है कि कला कौशल की अभिरुचि के जातीय ह्रास से न केवल जाति की बुद्धि का ह्रास होता है, वरन् व्यापारिक विपत्ति भी आती है बाद में हेकल के 'राइडल आफ द यूनिवर्स' के अनुवाद 'विश्व प्रपंच' की रचनात्मक भूमिका के आरम्भ में ही उन्होंने स्पष्ट कर दिया—'जहां पहले लोग छोटी से छोटी बात के कारणों को न पाकर उसे ईश्वर की कृति मान संतोष कर लेते थे, वहां चारों ओर नाना विधानों के द्वारा कार्य कारण की ऐसी विस्तृत शृंखला उपस्थित कर दी गयी है कि किसी को बीच में ही ठिठकने की आवश्यकता न रह गया' बुद्धिवाद की रोशनी में जातीय परम्परा में शक्तिस्थान को पहचानने और 'द्रव्य की गति' की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया में इस परम्परा को आधुनिक युग के ऐतिहासिक पथ से जोड़ने की दृष्टि आचार्य शुक्ल के बुद्धिवाद को न औपनिवेशिक रास्ता पकड़ने देती है न पुनरुत्थानवादी

नवजागरण की बुद्धिवादी विचारधारा का प्रचार करनेवाला भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग अंग्रेजी राज के प्रति आकर्षण और घृणा के द्वन्द्व में फंसा हुआ था ब्रिटिश सरकार की विभिन्न सेवाओं में लगे अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों में आकर्षण का तत्व ज्यादा था वे पतनशील पूंजीवाद की खूबियों को अपनाने और परम्परागत आत्मनिर्भरशील ग्राम समाज के अवशिष्ट आदर्श मूल्यों को प्रायः खोने लगे थे अंग्रेजों के स्वर में स्वर मिलाकर वे यहां तक सोचते थे कि भारत के लोगों का वह हिस्सा जिसमें राजनैतिक और बुद्धिवादी चेतना है, पश्चिम की संतान है अतः उसे चाहिये कि अंग्रेजी साम्राज्यवाद को शत्रु नहीं, पूर्व के विकास का तंत्र समझे नवजागरण के सांस्कृतिक कर्मियों में भारतेंदु हरिश्चन्द्र का नाम अधिक आदर से इसलिए लेना चाहिए कि उन्होंने इस मिथक को स्वीकार नहीं किया 'कविवचन सुधा' के पन्नों पर और विभिन्न स्थान पर अपने भाषणों में उन्होंने अंग्रेजीराज की कटु आलोचना की पश्चिमी सभ्यता के अनुकरण में खण्डित सुधारवाद

के स्थान पर पश्चिम और पूर्व की सम्मिलित सांस्कृतिक विरासत से सार्थक प्रतिक्रिया की प्रक्रिया में समग्र सुधारवाद की ओर बढ़ना उनका लक्ष्य था इस प्रकार उनकी बुद्धिवादी विचारधारा में अंग्रेजी राज के प्रति घृणा तथा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रचुर तत्व थे

अपनी मृत्यु के एक वर्ष पहले बलिया के अपने ऐतिहासिक भाषण (नवम्बर,1884) में भारतेन्दु ने कहा था—'सुधारना भी ऐसा होना चाहिए कि सब बात में उन्नति हो धर्म में, घर के काम में, बाहर के काम में रोजगार में, शिष्टाचार में, चाल-चलन में, शरीर के बल में, मन के बल म, समाज में' आर्थिक और भौतिक उन्नति को वह नैतिक उन्नति से–जातीय जीवन की सम्पूर्ण मूल्य व्यवस्था में उन्नति से अलग कर नहीं देखते थे इसी भाषण मे उन्होंने आगे आह्वान किया—'यह समय इन झगड़ो का नहीं हिन्दू, जैन, मुसलमान सब आपस में मिलिए जाति में कोई ऊंचा हो चाहे नीचा हो सबका आदर कीजिए राज महाराजा को अपनी पूजा, भोजन,झूठी गप से छुट्टी नही हाकिमो को कुछ तो सरकारी काम घेरे रहना है कुछ बाल घुड़दौड़ थिएटर अखबार में समय गया कुछ बचा भी तो उनको क्या गरज है कि हम गरीब गन्दे काले आदमियो से मिलकर अपना अनमोल समय खोवे—मत यह आशा रखो कि पडितजी कथा में कोई ऐसा उपाय बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढे तुम आप कमर कसो, आलस छोडो आज से ठीक सौ वर्ष पहले साम्प्रदायिकता, जातिवाद उपनिवेशवाद, धार्मिक रूढ़ि एव अकर्मण्यता का खुले शब्दो में इतना तेजस्वी विरोध तथा भारतीय समाज के पुन निर्माण का आह्वान उन्नीसवी शताब्दी के किसी दूसरे नवजागरणकर्मी ने किया या नही इसमें सदेह है

रामचन्द्र शुक्ल ने ठीक ही पहचाना कि ऐसा इसलिए सम्भव हो सका कि भारतेन्दु ने आधुनिकीकरण को जातीय परम्परा से लगाव मे देखा– इन्होने समाज की कुरीतियो को दिखलाकर बराबर उनके सुधार पर जोर दिया है, पर अपने विचारो को परम्परागत विचारो से अलग करते हुए नही वरन् उनसे लगाव रखते हुए उस समय एक ऐसे सामजस्यपटु साहसी और प्रतिभा सम्पन्न पुरुष की आवश्यकता थी, जो कौशल से बढ़ते हुए विचारो का मेल देश के परम्परागत साहित्य से करा देता ऐसे ही पुरुष के रूप मे बाबू हरिश्चन्द्र साहित्य क्षेत्र म उतरे उन्होंने हमारे जीवन के साथ हमारे साहित्य को फिर से लगा दिया बडे भारी विच्छेद से उन्होंने हमे बचाया विच्छेद से बचाने का यह काय उपनिवेशवाद विरोधी राष्ट्रीय सास्कृतिक संघर्ष की प्रक्रिया म एक बुनियादी काय था

रामचन्द्र शुक्ल की दृष्टि म उस जमाने के नये लोगो के शासक वर्ग भाषा उर्दू के बीच पड जाने से' तथा नये नये विचारो के समावेश के लिए हिन्दी साहित्य का क्षेत्र

इतना परिमिति दिखाई पड़ने से वास्तविक साहित्यिक संस्कृति का विकास नहीं हो पा रहा था भारतेन्दु ने यह काम किया उन्होंने साहित्य को जीवन से तथा जीवन की परम्परा को नये नये विचारों से जोड़ा यही उनकी आधुनिकता थी कम से कम रामचन्द्र शुक्ल ने उनकी आधुनिकता को इसी रूप में पहचाना, इस तरह आधुनिक साहित्यिक संस्कृति के विकास को समझने की एक नयी ऐतिहासिक दृष्टि दी

सुधारवाद की राजनीति ने 1857 के स्वाधीनता संग्राम और भारतेन्दु युग की नव जागरण की क्रांतिकारी विचारधारा का रास्ता अल्प काल के लिए जाम कर दिया सेफ्टी वाल्व के रूप में 'कांग्रेस' की स्थापना के बाद पैदा किये गये अंग्रेजी राज के प्रति पुनर्आकर्षण के कारण सुविधावादी राजनतिक चेतना का प्रसार होने लगा, जिसकी वजह से आगे चलकर विभिन्न सम्प्रदायों और जातियों में विभेद का रास्ता ही नहीं खुला, राष्ट्रवादी जागरण में अविवेक के विभिन्न रूपों को पनपने का अवसर मिला मध्ययुगीन अलगाववाद और रूढ़िवाद से जर्जरित भारतीय समाज में आधुनिक रूपान्तरण के साथ साथ विपर्यय के भी कई अवसर आये प्रतिनिधि सभाओं और स्थानीय स्वशासन में सीमित हिस्सेदारी के लिए दौड़ लगाना तथा सुधार के मायाजाल में फंसे रहना एक तरह का विपर्यय ही था जिसका अंग्रेजों ने फायदा उठाया वस्तुत अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए ब्रिटेन की बुर्जुआजी ने सुधारवाद की विचारधारा का फायदा उसी प्रकार उठाया जिस प्रकार आगे चलकर राष्ट्रीय बुर्जुआजी ने स्वदेशी आंदोलन की विचारधारा का

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के मई 1901 के अंक में सुधारवाद के मायाजाल में फंसे होने के कारण ही महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा में लिखा– यदि हम महारानी के राजत्व काल की घटनाओं पर ध्यान करते हैं तो आश्चर्य से मुग्ध रह जाते हैं विद्या में विज्ञान में, कला में, कौशल में राज्य वृद्धि में, शिक्षा प्रचार में, दीन दुखियों की सुध में, निदान प्रत्येक बात में हम इस राज्य की समता नहीं पाते' भले यह टिप्पणी विक्टोरिया की मृत्यु के शोक में लिखी गयी हो, फिर भी महावीर प्रसाद द्विवेदी की कलम से इसमें 'राज्य वृद्धि' और 'दीन दुखियों की सुध' का उल्लेख नहीं जमता कांग्रेस के कर्त्ता (सरस्वती नवम्बर 1905) लिखकर महावीर प्रसाद द्विवेदी मध्यवर्गीय सुविधावाद को प्रोत्साहन देने वाले तथा अंग्रेजी राज से न्याय की आशा रखनेवाले दादा भाई नारोजी गोपाल कृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता आदि की तारीफ कर रहे थे तब बालमुकुन्द गुप्त ने 'भारतमित्र' में छपे अपने 'शिवशम्भू के चिट्ठे' में स्थिति को अधिक यथार्थता से व्यक्त किया था अंग्रेजी शासकों की चिरौरी मिनती करनेवाले लिबरलों पर कटाक्ष करते हुए उन्होंने 23 दिसम्बर 1905 के मिन्टो के नाम' अपने खत में लिखा था–'यहाँ के कुछ लोगों की समझ में आपके पूर्ववर्ती

शासक ने प्रजा को बहुत सताया है और वह उसके हाथ बहुत तंग हुई वह समझते हैं कि आप उनकी पीडाओं को दूर कर देंगे, जो आपका पूर्ववर्ती शासक यहाँ फला गया है इसी से दौडकर आपके द्वार पर जाते हैं यह कदापि न समझिये कि आपके गुण पर मोहित होकर जाते है वह जस आँखों पर पट्टी बांधे जाते है, बस ही चले आते हैं जिस अंधेरे मे हैं उसी मे रहते है बालमुकुन्द गुप्त ने ही 16 फरवरी 1907 की तारीख मे 'मार्ली साहिब के नाम' लिखा—'एक बात अब भारतवासियो के जी म भलीभाति पक्की होती जा रही है कि उनका भला न क सरवेटिव ही कर सक्त है और न लिबरल ही यदि उनका कुछ भला होना है तो उन्ही के हाथो इसकी आखिरी पंक्ति भारतेन्दु के कथन की प्रतिध्वनि है—'तुम आप कमर कसो' 1857 के स्वाधीनता सग्राम और भारतेन्दु युग की क्रान्तिकारी चेतना जिस विपयय की शिकार हुई थी, उससे मुक्त होकर राजनतिक और बौद्धिक क्षेत्र मे अब फिर फैलने लगी, क्योंकि अब साधारण मेहनतकश जनता और जागरूक, शिक्षित तथा पूजीपति वग एक दूसरे से मिलकर मुक्ति का व्यापक राष्ट्रीय रास्ता ढूढना शुरू कर चुके थे

उस जमाने म लोगो की आत्मा पर एक भारी बोझ थी सरकारी नौकरी जिसे ठुकरा देना राष्ट्रवादी विवेक का पहला परिचय पत्र समझा जाता था रामचन्द्र शुक्ल ने न केवल अलवर महाराजा के हिन्दी सचिव का पद त्याग दिया,बल्कि नायब तहसील-दारी की नौकरी भी ठुकरायी अलवर महाराजा की नौकरी त्यागने के बाद गरीबी से उत्तेजित पत्नी को उन्होने एक पद म यह कहकर शान्त किया—'हम चीथडे पहनेंगे चना चाबेंगे लेकिन चौपट विवेकहीन राजा की चाकरी कभी नही करेंगे उन्हे अलवर महाराजा का ठाट बाट साहित्यिक जगत की तुलना मे तुच्छ प्रतीत होना था, ठाटबाट की उस विच्छिन्न जिन्दगी से बाहर का हसता खेलता रोता गाता, मुरझाता-खिलता जगत उन्हे अधिक प्रिय था चन्द्रशेखर शुक्ल ने रामचन्द्र शुक्ल के जीवन की घटनाओं पर रोशनी डालते हुए लिखा है—जब शुक्लजी को अगोना से अपने परिवार का साथ रखने के लिए छोटी मोटी नौकरी भी दुलभ हो रही थी तब उनका नायब तहसीलदारी जसे पद को ठुकराना उनकी महत्ता का परिचायक था इस घटना के बाद ही उन्होने अग्रेजी मे 'व्हाट हैज इण्डिया टू डू' शीर्षक से एक लेख लिखा जिसमे उन्होने तत्कालीन राजनतिक, सामाजिक और आर्थिक समस्याओं पर गभीर विचार करके भारतवासियो के कतव्य का अच्छा निर्धारण किया है' चन्द्रशेखर शुक्ल की पुस्तक से सूचना मिलती है कि यह लेख 'हिन्दुस्तान रिव्यू' के 1903 04 के किसी अक म प्रकाशित हुआ है 'हिन्दुस्तान रिव्यू' के इन दो वर्षों के किसी भी अक म रामचन्द्र शुक्ल का कोई लेख नहीं है सम्भव है इसके पूव के किसी अक या किसी दूसरी पत्रिका म यह लेख दबा पडा हो किन्तु इसके अलावा भी प्रमाण है कि रामचन्द्र शुक्ल के मन म अंग्रेजी राज के प्रति शुरू से ही आकषण नही, बल्कि अपार घृणा थी उन्होने नौकरी ठुकरायी थी,

'बाबू राधाकृष्ण दास का जीवनचरित (1913) मे भी एक स्थान पर लिखा—'19 दिसम्बर 1908 को वाइसराय की सवारी जिस ठाटबाट से निकली उसका स्मरण करते रहने का ठेका इतिहास ने ले रखा है चारो ओर चित्त की क्षुब्ध और नि मार वृत्तियो का प्रवाह उमड रहा था ' आचाय शुक्ल की दृष्टि आरम्भ से ही साम्राज्यवाद-विरोधी थी

सन् 20 से पहले अंग्रेजी राज के कठोर प्रतिब ध के कारण बहुत सी बातो को खुलकर कहना सहज नही था, सुधारवादी इसकी जरूरत भी नही समझते थे कि तु गुलामी के बोझ से दबे जिन हृदयो मे स्वत त्रता के विचार कुनबुनाते थे, वे सुधारवाद से असतुष्ट थे उनकी नजर म परम्परा और तकबुद्धि मे से प्रत्यक का कोई भी अथ भारत के स्वत त्र आधुनिक भविष्य के स दभ मे था

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने समाज में फले मध्ययुगीन सामती विलासिता और आलस्य के भाव का जमकर विरोध करते हुए निर्देश दिया—कवि एसे भावो पर घृणा प्रकट करके लोगो के चित्त मे भी उनके प्रति घृणा उत्प न करने की चेष्टा करे ' राम विलास शर्मा ने महावीरप्रसाद द्विवेदी का मूल्यांकन करते हुए ठीक ही कहा कि वह रीतिवाद के विरोधी हु , कि तु अतार्किक आधार पर अपने वक्त य म महावीरप्रसाद द्विवेदी की घृणा को प्रेमच द की घृणा के समतुल्य ठहरा दिया यही नहीं 'मथिलीशरण गुप्त की कविता मे उस तरह की घृणा का अभाव है, पर सद्धांतिक रूप से उनके और प्रेमच द के चि तन मे यहा कोई अतर नही है (*महावीरप्रसाद द्विवेदी और हि दी नव-जागरण*) इस प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी मथिलीशरण गुप्त तथा प्रेमच द की ऐतिहासिक साहित्यिक स्थितियो म रामविलास शर्मा ने घालमेल पदा कर दिया उ होने स्पष्ट नही किया कि महावीरप्रसाद द्विवेदी की घृणा सुधारवादी थी-रूढि विरोधी, जबकि प्रेमच द की घृणा वग घृणा थी पू जीवाद विरोधी मथिलीशरण गुप्त एक मध्ययुगीन तत्व रीतिवाद से मुक्त होकर भी एक दूसरे मध्ययुगीन तत्व भक्तिवाद से प्रभावित थे, जबकि प्रेमच द ऐसा नही थे रामच द्र शुक्ल ने वग घृणा की दृष्टि नही अपनायी एव सिद्धा तत 'क्रोध का दान' प्रस्तुत किया क्योकि सावजनिक होते हुए भी 'घृणा निवृत्ति का माग दिखलाती है और क्रोध प्रवृत्ति का ' फिर भी अभि यक्ति पर प्रतिबध के कारण प्रतीकात्मक रूप मे ही सही उ होने ब्रिटिश साम्राज्यवाद क प्रति अपनी घृणा जाहिर की—किसी अनाथ अबला पर अत्याचार करने पर एक कूटपिशाच को हम उद्यत देख रहे हैं समझाना बुझाना या तो व्यथ है अथवा इतना समय ही नही है ऐसी दशा मे यदि उस अबला की रक्षा इष्ट है तो हमे चटपट उस कम म प्रवृत्त होना होगा जिससे उस दुष्ट को बाधा पहुचे उस समय हमारा क्रोध कितना सु दर और अक्रोध कितना घृणित होगा ' (क्षात्र धम का सौ दय 1921 यह सुधारवाद के प्रति घृणा की अभि-व्यक्ति थी, जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर सक्रिय क्रोध की मार ल जाती थी एक अधिक

वस्तुपरक स्थिति की ओर ठीक इसी काल में प्रेमचन्द का भी सुधारवाद से मोहभंग हो चुका था और वह बदलाव की राजनीति की तरफ मुड़ गये थे

महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सामन्तवाद रीतिवाद विरोधी संघर्ष को निर्णायक बिन्दु तक पहुंचा दिया किन्तु राष्ट्रीय तत्वों का अभाव नहीं होते हुए भी सुधारवाद उनके चिन्तन की एक जबरदस्त सीमा थी इसमें अंग्रेजी राज के प्रति घृणा के साथ आकर्षण के तत्व भी प्रचुर परिमाण में मिश्रित थे इसके अलावा 'सम्पत्तिशास्त्र (1908) में उन्होंने भारतीय किसानों के दुख दर्द के प्रति गंभीर चिन्ता व्यक्त करते हुए भी किसानों की आर्थिक उन्नति के स्थान पर मुख्य रूप से पूंजीपतियों की आर्थिक उन्नति के बारे में लिखा, एक तरह से उत्पादन के साधन भूमि, श्रम, पूंजी, साहस और संगठन की व्याख्या करते हुए पश्चिमी अर्थशास्त्र का ही प्रचार किया पुस्तक की भूमिका में देश के कला-कौशल और उद्योग धंधों की उन्नति के उपाय सोचने पर बल देकर उन्होंने एक खास दृष्टि से हिंदी क्षेत्र में आर्थिक प्रगति की चेतना फैलानी चाही उन्होंने अंग्रेजी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं में लिखी पश्चिमी अर्थशास्त्र की उन पुस्तकों का नामोल्लेख भी किया, जिनके आधार पर सम्पत्तिशास्त्र'की रचना हुई थी द्विवेदीजी का सामाजिक दृष्टिकोण मूलत किसानों का था' (रामविलास शर्मा), फिर भी महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सम्पत्ति शास्त्र की रचना पूंजीवाद के लिए की, यहां तक कि इन्हें मजदूरों की हड़ताल बेजा मालूम देती थी—'जिस देश में कम्पनियां खड़ीकर के लोग बड़े बड़े काम करते हैं, अथवा साम्पत्तिक अवस्था सुधरने से, अकेले एक ही आदमी या दो चार मिलकर बड़े-बड़े व्यापार व्यवसाय चलाने लगते हैं उस देश में बहुधा हड़ताल का रोग पैदा हो जाता है हिन्दुस्तान अब तक इससे बचा हुआ था, परन्तु कुछ समय से यहां भी इसका प्रादुर्भाव हुआ है' महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हड़ताल को एक रोग कहा परन्तु बम्बई के मजदूरों ने इसी साल तिलक की गिरफ्तारी के बाद हड़ताल को राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति का एक प्रमुख माध्यम बना कर दिखा दिया कि किस प्रकार हड़ताल मजदूर वर्ग के समग्र संघर्ष का एक जरूरी आधुनिक अस्त्र है इसके अलावा उन्हीं दिनों 'सरस्वती में माधवराव सप्रे ने लिख कर स्पष्ट किया—'पूंजीवाले अपने व्यापार का नफा स्वयं आप ही ले लेते हैं और जिन लोगों के परिश्रम से यह सम्पत्ति उत्पन्न की जाती है, उनको पेट भर खाने को नहीं देते ऐसी दशा में श्रम करने वाले मजदूरों को हड़ताल करना पड़ता है'

निःसंदेह महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा उनके युग के किसी भी साहित्यकार का मूल्यांकन मजदूर वर्ग के दृष्टिकोण से करना ज्यादती होगी लेकिन उनकी सीमाओं का छिपा जाना एक दूसरा अन्याय होगा हमें उनके लेखन में सुधारवाद के उस असर को रेखांकित करना होगा जिससे प्रेमचन्द रामचन्द्र शुक्ल तथा छायावादी साहित्यकारों

ने अपनी अपनी वैचारिक भूमि से संघर्ष किया यह संघर्ष सामंतवाद तथा रीतिवाद विरोधी संघर्ष से व्यापक था और एक विकसित ऐतिहासिक रूप था

तत्युगीन नवजागरण की संभावना और सीमा महावीरप्रसाद द्विवेदी की इस पंक्ति में है–'अब शिक्षित जनों का ध्यान देशोन्नति की तरफ जाने लगा है,शिक्षा प्रचार की तरफ जाने लगा है विद्या,विज्ञान और कला-कौशल के अभ्युदय की तरफ जाने लगा है ' रामचंद्र शुक्ल आधुनिकीकरण की उपलब्धियों को खोने के पक्ष में नहीं थे एक तो ये महज अंग्रेजी राज की कृपा के फल न होकर अंतराष्ट्रीयस्तर पर जनतांत्रिकऔर वैज्ञानिक क्रांतियों के फल थे, दूसरे प्राचीन गौरवशाली इतिहास की आधुनिक कड़ी में अपनी जाति को फिर से गढ़ने के दीर्घ संघर्ष के परिणामस्वरूप ये फल सामने आये थे और जनतांत्रिक तथा वैज्ञानिक चेतना का प्रसार हुआ था अतः रामचंद्र शुक्ल का अपना मूल्यांकन भी यही था–'यदि आज से 40 वर्ष पहले कुछ दूरदर्शी महात्मा समय की बिगड़ी हुई चाल के विरुद्ध खड़े होकर बल नहीं लगाते तो सर सय्यद अहमद (पाश्चात्य शिक्षा के लिए अलीगढ़ कालेज के संस्थापक तथा उन्नीसवीं सदी के एक कट्टर राजभक्त सुधारवादी जिसने 1857 के संग्राम में अंग्रेजों का साथ दिया था-लेखक) के कथनानुसार हिंदी गंवारों की बोली हो जाती और फिर उसमें 'संपत्तिशास्त्र' केमेस्ट्री और वैज्ञानिक 'कोश' बनने की नौबत नहीं आती न भारत मित्र, 'हितवार्ता' और 'अभ्युदय' देखने में आते '(नागरी प्रचारिणी पत्रिका, 15 अप्रेल 1910) रामचंद्र शुक्ल ने भी देशोन्नति के लिए अर्थशास्त्र, विज्ञान, कला कौशल और पत्रकारिता के अभ्युदय का समर्थन किया उन्होंने भी महावीर प्रसाद द्विवेदी की भांति मातृभाषा के विकास के लिए काम किया अंग्रेजों का समर्थन नहीं किया, जबकि ज्यादातर सुधारवादी विचारक अंग्रेजी पसंद करते थे जनतांत्रिक चेतना के प्रसार के लिए इतना सब करने की जरूरत थी लेकिन रामचंद्र शुक्ल ने देशोन्नति के अलावा सवाल उठाया देशमुक्ति का, यह सुधारवादी नवजागरण का अतिक्रमण था 'भारतमित्र, 'हितवार्ता 'अभ्युदय देशमुक्ति के पत्र थे, जिनका रामचंद्र शुक्ल ने जिक्र किया सरस्वती देशोन्नति का पत्र था समय आ गया था जब देशमुक्ति के बिना देशोन्नति असंभव जान पड़ने लगी थी और बुद्धिवादी आंदोलन राष्ट्रवादी तत्व के बिना फीका लगने लगा था

भारत में बुद्धिवादी आरंभ से ही गहरे अंतर्विरोध के शिकार थे जबकि धार्मिक ढांचे के मध्ययुगीन सांस्कृतिक आंदोलन के उन्नायक भक्त कवि निचले वर्ग से आये थे और इसके जीवन में रचे बसे थे आधुनिक सभ्यता की नयी सुबह की घोषणा करने वाले बुद्धिवादी उच्च वर्गीय थे और निचले स्तर के जीवन की वास्तविकताओं से अनजान थे अठारहवीं सदी के यूरोपीय समाज के बुद्धिवादी आंदोलन के इतिहास को वे अंग्रेजों के ज्ञान विज्ञान, वाणिज्य उद्योग, शिक्षा और जीवनपद्धति के आधार

पर केवल दुहरा देना भर चाहते थे उन्हें भारतवासियों के ज्ञान विज्ञान, वाणिज्य-उद्योग, शिक्षा और जीवन पद्धति के इतिहास से कोई मतलब न था अब तक लक्ष्य केवल ब्रिटिश शासन की सेवाओं अथवा प्रतिनिधि सभाओं में जाना था उनकी बुद्धिवादी विचारधारा परजीवी थी यह स्वतन्त्र बौद्धिक सोच का प्रतिफलन न थी मकाले पश्चिमी शिक्षा के प्रसार द्वारा यहां के लोगों का बाहरी जीवन भारतीय रखते हुए अन्तरात्मा को पश्चिमी बना देना चाहता था हुआ यह कि अन्तरात्मा तो अधिक दकियानूसी हो गयी, जबकि बाहरी जीवन बेशक अधिकाधिक पश्चिमी होता गया

स्वतन्त्र परिस्थितियों में विकसित होने के कारण यूरोपीय बुद्धिवादी आंदोलन ने पश्चिम में जीवन को एक ऐसा आधुनिक ढांचा दिया था जिसमें 'दिखने' और 'होने' में अन्तर नहीं था–लोग जैसा दिखते थे वैसा होते भी थे आधुनिक भारतीय शिक्षित वर्ग के 'दिखने और होने' में बड़ा फर्क था वह भीतर से लगातार दकियानूस और बाहर से आधुनिक बनने लगा था कुछ सुधारवादी बुद्धिजीवियों के जीवन से ही उदाहरण देकर बात स्पष्ट की जाय 1908 में गोपाल कृष्ण गोखले ने इंग्लैंड में तिलक की गिरफ्तारी के समय उग्र विचार व्यक्त किये, पर भारत लौटने पर अंग्रेजी सरकार से माफी मांग ली बालविवाह का विरोधी होकर भी केशवचन्द्र सेन ने अपनी लड़की की शादी कूचविहार के बाल राजकुमार से की ब्रह्मसमाजी होते हुए यह शादी सनातन पद्धति से की विधवा विवाह के प्रचारक महादेव गोविंद रानाडे ने अपने से काफी कम उम्र की क्वारी लड़की से शादी रचाई जब समाज सुधारकों का यह हाल था, बाकी का क्या हाल होगा

बात यहीं खत्म नहीं होती बुद्धिवाद का विस्तार राष्ट्रवादी पथ से हटकर औपनिवेशिक पथ से होने लगा रवीन्द्रनाथ टैगोर के साहित्य में प्रचुर मानवतावादी और लोक तत्व हैं लेकिन पश्चिम के औपनिवेशिक आकर्षण का तत्व उन्हें देश से ऊपर उठा कर एक ऐसे समय विश्व का बना देता है जब देश को उनकी सबसे अधिक जरूरत थी इसलिए उनके परवर्ती साहित्य का एक सामाजिक आधार औपनिवेशिक जमींदारी में और दूसरा हुआ अन्तर्राष्ट्रीयतावाद में है आम भारतीय बुद्धवादी अंधविश्वासी न थे पर योग-तन्त्र रहस्यवादी जरूर थे वे सामाजिक सुधार चाहते थे पर राजनीतिक मुक्ति से उन्हें लगता था कि भारत पिछड़ जायेगा तिलक की विचारधारा इसके विपरीत थी उन्होंने परांजपे को अपने एक खत में लिखा– मैं यह नहीं मानता कि राजनीतिक स्वतन्त्रता के पूर्व सामाजिक पुनर्निर्माण का काम पूरा किया जाना चाहिए मैं राजनीतिक स्वाधीनता को अधिक महत्व देता हूं मेरा मत है कि अपना भाग्य निर्मित कर सकने की शक्ति के बिना हमारा राष्ट्रीय पुनरुत्थान नहीं हो सकता सामाजिक पुनर्निर्माण का कार्य वास्तविक आर्थिक परिवर्तन के बिना

नहीं हो सकता था और इसके लिए सबसे पहले अंग्रेजी साम्राज्यवाद का जुआ कंधे पर से उतार फेंकना जरूरी था आर पी परांजपे ने 'रेशनलिज्म इन प्रैक्टिस' में लिखा कि 'भले ही सारे राजनीतिज्ञ राष्ट्रीय विचारों से प्रेरणा ग्रहण करें, फिर भी राष्ट्र मानवता से कहीं एक बहुत कमतर चीज है और बहुत से अवसर आते हैं जब संकीर्ण राष्ट्रीयतावादी विचार को व्यापक अंतर्राष्ट्रीय और मानवतावादी विचार के लिए रास्ता छोड़ देना चाहिए' इतिहास में ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि अंग्रेजी राज से भारतीय जनता के बढ़ते असंतोष ने सुधारवाद की प्रतिक्रिया में पुनरुत्थानवाद को उभरने का अवसर दे दिया

-

पुनरुत्थानवाद सुधारवाद की प्रतिक्रिया में आया, इसलिए इसमें स्वाभाविक रूप से प्रतिक्रियावश उत्तेजना से पैदा हुई कमियाँ थीं पर देश का जनाधार इसके साथ था, जो आधुनिकीकरण के फायदों में पूरी तरह वंचित था, दीर्घकाल से अंग्रेजी राज के अत्याचार से पीड़ित था और अब जिसे एक पल के लिए भी बंधन असह्य हो गया था तत्युगीन पुनरुत्थानवादी वस्तुतः आज की भाँति संकीर्ण क्षेत्रगत, जातिगत, योनिगत या साम्प्रदायिक पुनरुत्थान नहीं चाहते थे वे राष्ट्रीय पुनरुत्थान चाहते थे, क्योंकि उनके मत से अपना भाग्य निश्चित करने की गौरवशाली जातीय शक्ति के जागरण के बिना देश मुक्ति नहीं हो सकती थी सिर्फ बुद्धिवाद से देशोन्नति नहीं हो सकती थी, अब राष्ट्रीय बुद्धिवाद या विवेक चाहिए था इसलिए शिवाजी और गणपति उत्सव के बहाने राष्ट्रवादी भावना का उग्र प्रचार शुरू हुआ एक हाथ में गीता और दूसरे में बम लेकर कुछ आतंकवादी भी सक्रिय हुए एक तरफ बालगंगाधर तिलक, लाला लाजपत राय, विपिन चन्द्र पाल ने सुधारवाद को ठुकराकर देशमुक्ति की आवाज उठायी, दूसरी तरफ क्रांतिकारी रास्ते से यही काम शचीन्द्रनाथ सान्याल, रासबिहारी बोस, नरेन्द्रनाथ दत्त प्रभृति युवकों ने किया जो बुद्धिवादी नहीं, धार्मिक आस्था रखने वाले बौद्धिक व्यक्ति थे बनारस में कालीपूजा के दिन सफेद मकड़ी मारी जाती थी, जिसका अर्थ गोरी जाति का विध्वंस था 21 फरवरी 1915 को राष्ट्रव्यापी गदर की एक योजना भी बनी जो व्यापक अंग्रेजी दमन के बाद असफल हो गयी प्रथम विश्वयुद्ध के समय तक सुधारवाद से पूरा मोहभंग हो चुका था जनता के दिलों में भावनाओं का स्पंदन व जगन निर्मित हो गया था राजनीतिकीकरण का रास्ता भी खुल गया था और स्वतंत्र आर्थिक अस्तित्व की चेतना सुगबुगा उठी थी यह साहित्य में भी एक नये युग के अवतरण का आधार था

यह वह काल था जब प्रतिक्रिया में पश्चिमी सभ्यता के प्रति संदेह अविवाद तक पहुँच गया पश्चिम से संवाद नहीं टूटा, पर अब यह पूर्व के पक्ष से चलने लगा विलियम जोन्स जैसे पश्चिमी प्राच्यविदों द्वारा संस्कृत भाषा और भारतीय सभ्यता

के इतिहास को पुराना मान लेने के बावजूद अभी अधिकांश पश्चिमी विचारकों की अहम्मन्यता टूटी नहीं थी वे भारत के इतिहास को पिछड़ेपन का इतिहास मानते थे और यहां की सभ्यता की उपलब्धियों की प्राचीनता सही रूप में स्वीकार नहीं करते थे विवेकानन्द ने पश्चिम जाकर घोषणा की कि 'आध्यात्मिकता के मामले में भारत पश्चिम से बहुत आगे है एक दिन मार्गदर्शक बनकर वह पश्चिम की आत्मा में इस शक्ति को पुनर्विकासशील करेगा' भूदेव मुखर्जी ने यह दिखाया कि पश्चिम ने ही पूर्व से सभ्यता का सबक सीखा पूर्व ने पश्चिम से नहीं उन्होंने प्रमाण प्रस्तुत किये कि यहां पहले से ही रसायनशास्त्र काफी उन्नत था, जिप्सियों का भी उदाहरण दिया उन्होंने कहा कि 'अंग्रेजों से हिंदुओं के कुछ सीखने के लिए है तो वह केवल व्यावहारिक मामलों में कार्यकुशलता, अन्यथा कुछ नहीं भारत के अतीत में कुछ था, इसे स्पष्ट करने के लिए रामचन्द्र शुक्ल ने 'हुएनसंग' (सरस्वती, 1904) में लिखा था–'यह पुरुष कौन था, किस अभिप्राय और किन-किन कठिनाइयों के उपरान्त यहां तक आया, इन बातों के जानने की इच्छा रखना भारतवासी मात्र का परम धर्म है' अपनी प्राचीन सभ्यता-संस्कृति के गौरवशाली आदर्शों की मानवतावादी पुनररचना ने परम्परा के विकास की आकांक्षा रखने वाले धर्मप्राण भारतीय लोगों में फिर से आत्मविश्वास पैदा किया जिससे उनके हृदय में भावनाएं और आंखों में स्वप्न मचलने लगे भाववादी स्तर पर ही ऐसा हुआ पर जब देश में पश्चिमी सभ्यता का औपनिवेशिक आक्रमण छाया हो दूसरे, लोग बुद्धिवाद के आधुनिक फलों को अपने समाज में यथार्थ स्तर पर अनुभव नहीं कर पा रहे हों, भाववादी स्तर पर उनके आत्माजगत को गतिशील करने का कार्य साधारण नहीं था यह कार्य सम्पन्न हो सकता था सुधारवाद का विरोध करके अगर सुधारवाद औपनिवेशिक मानसिकता से आक्रांत नहीं होता तो कुछ राष्ट्रवादी अभी भी इतना ज्यादा अतीतवादी न होते, उनका आधुनिक परिप्रेक्ष्य और व्यापक होता

भारतेंदु मण्डल के एक साहित्यकार बाबू काशीनाथ खत्री के बारे में लिखते हुए रामचन्द्र शुक्ल ने सुधार का राजनैतिक मुक्ति आंदोलन से काटकर देखने की दृष्टि पसंद नहीं की–वे पूरे समाज संशोधक थे पर मुंह के बल गिरने वाले न थे देश के राजनैतिक आंदोलनों से भी इनकी पूरी सहानुभूति रहती थी अंग्रेज भक्त सुधारवादियों पर रामचन्द्र शुक्ल का कटाक्ष कितना तीखा है इसी लेख (1906) में मन में उन्होंने काफी महत्व देकर बाबू काशीनाथ खत्री का यह कथन उद्धृत किया– विलायती चीजों के देश में फलने से हमारे सब उद्यम नष्ट हो गये यहां बातों की तो यह हीन दशा हो गई और विलायत के वणिक और कारीगर यहां के प्रभाव से धन धान्य से परिपूरित हो गये हमको सूखी रोटी नहीं जुड़ती वे गुलछर्रे उड़ाते हैं' पश्चिम में पूंजीवाद का विकास, वैज्ञानिक आविष्कार और औद्योगिक प्रगति भारतीय

उद्यम, व्यवसाय और कारीगरी के विनाश के बाद ही संभव हुआ अपने विलायती माल के प्रचार और खपत द्वारा अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक उन्नति ही नहीं की, शिक्षित समुदाय को पश्चिमी सभ्यता की चमक में फसाकर रखा पश्चिमी माल के हर टुकड़े के पीछे औपनिवेशिकता का जबर्दस्त काम था, जैसा कि आज भी बहुराष्ट्रीय कंपनियों में बने माल के पीछे है आज सोचा नहीं जा सकता कि टूथपेस्ट से लेकर रंगीन टी वी, वीडियो तथा प्रौद्योगिक संस्कृति के अन्य अपचेतक उपादानों के उपभोग के प्रति विवेकसम्मत सजगता कभी जगेगी, लेकिन किसी जमाने में राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में उभार विदेशी मालों के बहिष्कार के साथ ही आया था इसमें उन विचारों का बहिष्कार भी शामिल था, जो औपनिवेशिक माल की तरह थे

भारत के सुधारवादी जो संस्कृति बना रहे थे, उनका क्षेत्र और लक्ष्य अत्यंत सीमित था गतिशीलता की क्षमता के बावजूद उसमें व्यक्ति स्वातन्त्र्य के तत्व की खास तौर पर कमी थी, जिसका इटली, इंग्लैंड, फ्रांस आदि यूरोपीय मुल्क की जनता ने अपने नवजागरणकाल में बार-बार पूरी कीमत चुकाकर संरक्षण और विकास किया था, क्योंकि इसके बिना प्रत्येक के इच्छा और चिंतन का स्वतंत्र बौद्धिक विकास असंभव था वहां आधुनिकीकरण में आयी हर तीव्रता ने व्यक्ति में निजता तथा स्वायत्तता की भावना को मजबूत बनाया

भारतीय समाज, खासकर हिंदी प्रदेशों के समाज में रूढ़िवाद बहुत निर्मम रूप में मौजूद था बम्बई और बंगाल की भांति यहां व्यवसाय की उन्नति नहीं हो पायी थी अकाल अधिकतर यही पड़ते थे, आधुनिकीकरण भी सीमित मात्रा में हुआ था और जितना हुआ था उसमें औपनिवेशिक बर्बरता अधिक थी इन सीमाओं के कारण हिंदी बेल्ट के समाज नवजागरण का अत्यंत सीमित अनुभव कर सके एक भी ऐसा बड़ा और मौलिक प्रतिभा का आदमी इस समाज में नहीं हुआ, जिसके रूढ़िवाद विरोधी कार्य का व्यापक सामाजिक प्रभाव पड़ा हो जो छोटे बड़े राजनीतिक हुए उन्होंने भी आमतौर पर हिंदी समाज की रूढ़ियों और अंधविश्वासों को सहलाया ही, इन्हें जड़ से उखाड़ने का जोखिम नहीं उठाया जाहिर है यहां नवजागरण अधिकतर पत्रिका किताब के पन्नों अथवा मुट्ठी भर शहरी बुद्धिजीवियों के बीच सीमित था फिर भी हिंदी प्रदेश के समाज राष्ट्रवादी मुक्ति संग्राम में किसी से पीछे नहीं थे इनमें संग्राम का माद्दा प्राय्य विवेक की राष्ट्रीय परम्परा से पैदा हुआ था और आंदोलन के उन साधारण राष्ट्रीय प्रतीकों को पहचान कर विकसित हुआ था, जिनमें उनके जीवन का गहरा ताल्लुक था अत राजनैतिक स्वातंत्र्यबोध के भीतर से व्यक्ति-स्वातंत्र्य का बोध जिस हद तक पनप सकता था पनपा वैज्ञानिक और औद्योगिक विकास के अभाव में उसे तर्क-

बुद्धि की आधुनिक गुलाम अधिक हासिल नहीं हुई बल्कि तर्कबुद्धि क्षमता से सम्पन्न होने का दावा करने वाले राजभक्त सुधारवादियों ने इस वर्ग को अंग्रेजी राज के सम्मोहन में बरकरार रखने का प्रयत्न किया

सुधारवादियों का किसान वर्ग से क्या सम्बन्ध था, इसको भी ध्यान में रखना चाहिए क्योंकि अंग्रेजी शासन के अत्याचार से सबसे ज्यादा पीड़ित तबका यही था कवि रामनरेश त्रिपाठी ने अपनी पुस्तक 'देश का दुखी अंग' (1921) में किसानों की निस्सहायता के बारे में लिखते हुए कहा—'स्वतन्त्रता और स्वराज्य कौन नहीं चाहता, पर हमारे देश के मुल्किस लोग गावों में अमन समाये योजते हैं लोगों का अंग्रेजी राज्य के पायदे समझाते हैं जिस जाल से प्रजा निकलना चाहती है उसमें वे उसे गाढ़ और दे देना चाहते हैं सरकार ने जिस मतलब से उन्हें पढ़ा लिखाकर तयार किया था उस वे पूरा पूरा निभा रहे हैं आप तो गुलाम बन हैं, बेचारे गांव वालों को भी गुलामी की बेड़ी में जकड़ना चाहते हैं' यह स्वर सुधारवाद से मोहभंग का था इसी का अगला हिस्सा इस प्रकार है—'हिन्दुस्तान में जमीदारों ने अपने किसानों पर जो लूटखसोट मचा रखी है, वह हद तक पहुंच चुकी है बहुत जल्दी उसका अन्त हुआ चाहता है फ्रांस में किसानों के आंदोलन से जमीदारों का पन्ना टूट चुका है रूस का हाल ताजा है वहां बादशाहत तक का खात्मा हो गया

यह स्वर सुधारवाद का अतिक्रमण कर उस राष्ट्रीय मुक्ति चेतना को प्रतिध्वनित करता है जिस पर देश की भावी राजनीति ही नहीं आधुनिक साहित्यिक संस्कृति को भी खड़ा होना था इस भारतीय कृषक वर्ग की महान परम्परा पर आधारित होकर खड़ा होना था प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल और छायावादी कविता का अलग अलग परिप्रेक्ष्य के बावजूद लक्ष्य एक था—परम्परा का आधुनिकीकरण यह परम्परा भारतीय कृषक वर्ग के आर्थिक सांस्कृतिक जीवन की थी जिसका आधुनिक पुनर्निर्माण होना शेष था इस उद्देश्य से औपनिवेशिक आधुनिकीकरण पर आधारित सुधारवाद और रूढ़िवादी पुनरुत्थान दोनों का व्यापक विरोध शुरू हुआ, जो जरूरी था

तभी रामचन्द्र शुक्ल ने एक ऐसी साहित्यिक संस्कृति की नींव मजबूत करनी चाही जो साधारण भारतवासियों का न परायी लगे और न पिछड़ा जो पश्चिम अनियन्त्रित वासनाओं पर आधारित हो न मध्ययुगीन रूढ़िवाद पर वह है एक बुद्धि-सम्मत राष्ट्रीय साहित्यिक संस्कृति इसका एक मूल सारतत्व है विचार और निर्णय की स्वतन्त्रता क्योंकि इसके बिना कोई भी बुद्धिसम्मत संस्कृति नहीं होती रामचन्द्र शुक्ल ने 'आदर्श जीवन' (1921) में लिखा हम अपने विचार और निर्णय की स्वतन्त्रता बनाये रखना चाहिए—तुलसीदास को लोक में जो इतनी लोकप्रियता और

कीर्ति प्राप्त हुई, उनका दीर्घ जीवन भी इतना महत्वमय और शांतिमय रहा, सब इसी मानसिक स्वतन्त्रता, निद्वन्द्वता और आत्मनिर्भरता के कारण ' औपनिवेशिक बुद्धिवाद को फटकारने के उद्देश्य से ही उन्होंने लिखा— मेरी समझ मे शिवाजी के सवारों की तरह चने बांधकर चलना, औरंगजेब के सवारों की तरह हुक्के और पानदान के साथ चलने से अच्छा है ' चारों तरफ बौद्धिक उपनिवेशन के प्रबल वेग के कारण राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की क्षमताओं का क्षय होने लगा था, जिससे अपनी जाति को बचाना रामचंद्र शुक्ल का एक मुख्य उद्देश्य था

कुछ प्रगतिवादी आलोचकों को क्रांतिकारी परिवर्तन पर भरोसा न होने के कारण सुधारवाद कुछ अधिक प्रिय लगता है वे आधारभूत ढांचे मे परिवर्तन के स्थान पर सुधारवाद इसलिए पसंद करते है कि उन्हें भारतीय समाज पिछड़ा और क्रांतिकारी परिवर्तन की दृष्टि से हमेशा अपरिपक्व नजर आता है उन्हें पुराने दिनों के सुधारवाद मे भी बौद्धिक वैज्ञानिक चेतना, समाज को आगे की तरफ ले जाने की दृष्टि तथा लगातार और पता नही क्या क्या दिखता है राष्ट्रीय मुक्ति चेतना के ऐतिहासिक विकास मे सुधारवाद की नि संदेह एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक भूमिका है लेकिन परिस्थितियों के विकास से सम्बन्ध न बठा पाने की वजह से कहा उसमे अवरोध आया, यह पहचानना होगा बीसवी शताब्दी के आरम्भ मे सुधारवाद पूरी तरह उपनिवेशवाद का पिछलग्गू बन गया था सारा सुधारवाद पश्चिमी सभ्यता की लाइन पर चल रहा था देश की परम्परा और एतिहासिक जरूरत में उसका कोई रिश्ता न था पर 1905 मे जापान की विजय तदनंतर रूस मे व्यापक जागरण तथा भारत मे क्रांतिकारी तैयारी की कुछ घटनाओं ने जनता की आखें खोल दी और उसका सुधारवाद से मोह टूट गया

प्रताप कार्यालय से बिना किसी लेखक के नाम से 1919 मे 'साम्यवाद' शीर्षक से जो पुस्तक प्रकाशित हुई उसमे स्पष्ट घोषणा है कि आजकल के साम्यवादी विशेषकर राजनैतिक और क्रांतिकारी हैं वे औद्योगिक और सामाजिक संगठन एव शासन प्रणाली मे क्रांतिकारी परिवर्तन चाहते है सुधारवादियों की तरह वे सिर्फ इतना नही चाहते कि वर्तमान समाज रूपी मशीन मे कुछ सुधार कर दिये जायें वरन् वे यह चाहते हैं कि आजकल के सामाजिक संगठन को बिल्कुल उलट दिया जाय बिल्कुल उलट देने की परिस्थिति तब नही थी, लेकिन ब्रिटिश उपनिवेशवाद से भारतीय जनता के गहराते अन्तर्विरोध के परिप्रेक्ष्य मे अग्रेजी राज का खात्मा मुख्य उद्देश्य बनता जा रहा था इसके बिना समाज मे वह आर्थिक गतिशीलता संभव नही थी, जिसके आधार पर सामाजिक सुधार के कार्यों मे व्यापकता आती इसलिए बुद्धिवाद और राष्ट्रीयता मे किसी एक को चुनने की नियति से बचकर समाज शीघ्र

इनमें अन्तर्विरोध का अनुभव करने लगा सुधारवादियों के पास स्वतन्त्रता तथा पुनरुत्थानवादियों के पास आधुनिक भविष्य की समझ नहीं थी अन्तर्विरोध की प्रक्रिया में लोगों को महसूस होने लगा कि उसे स्वतन्त्रता के साथ साथ आधुनिक भविष्य भी चाहिए-इनमें से किसी को छोड़ा नही जा सकता

सुधारवाद के प्रति अधिक मोहवश रामविलास शर्मा महावीर प्रसाद द्विवेदी की नवजागरण दृष्टि की सीमाओं को रेखांकित न कर सके यों भी उनका स्वभाव है कि अपने आलोचनानायक के गुणों का वह खूब बढ़चढ़कर वर्णन करते हैं तथा ब्यौरों के मवार म विरुद्ध म जाने वाली कुछ वास्तविकताओं को छिपा जाते हैं महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके युग का वर्णन करते समय उन्होंने यही किया, ताकि प्रेमचन्द, रामचन्द्र शुक्ल और विभिन्न छायावादी कवि महावीर प्रसाद द्विवेदी के विशाल व्यक्तित्व वट के आगे छोटे छोटे साहित्यिक पौधे नजर आयें सामतवाद रीतिवाद के खिलाफ संघर्ष, देशप्रेम, बौद्धिक राजनैतिक चेतना के प्रसार तथा इन्ही सबके व्यावहारिक प्रतिफलन के रूप म भाषा मे परिष्कार का जो महान् कार्य निःस्वार्थ भाव से, भले ही थोड़े अभिमान के साथ महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सपादित किया, उसका ऐतिहासिक महत्व है इस महत्व को रामचन्द्र शुक्ल ने स्वीकार किया है—'यदि द्विवेदी जी न उठ खड़े होते, तो जैसी अव्यवस्थित, व्याकरण विरुद्ध और ऊटपटांग भाषा चारों ओर दिखाई पड़ती थी, उसकी परम्परा जल्दी न रुकती, महावीर प्रसाद द्विवेदी के महत्व को भारतेन्दु युग तथा छायावाद या प्रेमचन्द युग से विच्छिन्न करके नही देखना चाहिए विश्वविद्यालयों मे साहित्य को युगों मे जिस निर्ममता से विभाजित कर दिया जाता है, इससे एक प्रकार का सरलीकरण ही पनपता है किन्तु विकास के ऐतिहासिक सूत्रों के घालमेल या उलझाव से भी वस्तुस्थिति स्पष्ट नही होती

रामविलास शर्मा ने लिखा है—'ऐसा लगता है, आगे आगे द्विवेदीजी पीछे पीछे शुक्ल जी, एक ही रास्ते पर दोनों बढ़ते चले जाते हैं' यह महावीर प्रसाद द्विवेदी का अति गौरवीकरण तथा रामचन्द्र शुक्ल की ऐतिहासिक स्थिति का अवमूल्यन है 'रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना' म इन्हे बहुत अधिक भौतिकवादी सिद्ध करने की भावना का ही यह आलोचनात्मक विपर्यय है रामविलास शर्मा का जिधर वचारिक झुकाव होता है उधर ज्यादा ही होता है और शीघ्र प्रतिवाद की तरफ बढ़ जाता है, इससे आलोचना एकांगी हो जाती है वस्तुस्थिति यह है कि रामचन्द्र शुक्ल कुछ दूर तक साथ चलने के बाद महावीर प्रसाद द्विवेदी का रास्ता छोड़ देते हैं और उनके लेखन मे मोड़ आ जाता है सुधारवाद से तीव्र संघर्ष और स्वातन्त्र्य चेतना के क्रांतिकारी अभ्युदय के परिणामस्वरूप यह मोड़ आता है यही वजह है कि रामचन्द्र

शुक्ल हिंदी भाषा के साहित्यिक वैभव के इतिहास तथा साहित्यिक आलोचना मे ही व्यापक रूप से प्रवृत्त नही होते दिखते भाषा के क्षेत्र मे भी उनकी दृष्टि द्विवेदी जी के सुधारवाद से आगे बढ जाती है नागरी प्रचारिणी 'पत्रिका' का थोडे काल तक सपादन करते हुए वह भाषा की राष्ट्रीय और सामाजिक शक्ति से हिंदी जनमानस को परिचित कराने लगते हैं और लोकवाद या जनवाद का विकास करते हैं महावीर प्रसाद द्विवेदी के लेखन मे विचारो की वह गूढ गुफित परम्परा नही मिलती, जिससे पाठक की बुद्धि उत्तेजित होकर किसी नई विचार पद्धति की ओर छोड पडे वे रामचन्द्र शुक्ल ने यह अच्छी तरह देख लिया था और अपने लेखन का नया रास्ता ढूढा था

महावीर प्रसाद द्विवेदी की नवजागरण दृष्टि की अपनी जबर्दस्त ऐतिहासिक सीमाए हैं जिनसे उनके सर्वाधिक सक्रिय कायकाल मे ही प्रेमचन्द, रामचद्र शुक्ल तथा छायावादी कवियों ने टकराना शुरू कर दिया था विभिन्न परिप्रेक्ष्य से यह टकराव सुधारवाद से थी, जिससे सामतवाद रीतिवाद विरोधी सघर्ष मे भी नयी जान पैदा हुई

389, जी टी रोड,
हावडा-6

जगदीश शर्मा

आचार्य शुक्ल का सौन्दर्यशास्त्र

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के सौन्दर्यशास्त्र की बात करना पहली दृष्टि में असंगत प्रतीत हो सकता है यही नहीं कि वे काव्य की उपयोगिता और उसके नैतिक पक्ष के प्रबल समर्थक थे, काव्य की सैद्धान्तिक चर्चा करते समय उन्होंने सौन्दर्यपरक दृष्टिकोण, कला और कलावाद पर प्रहार भी किया है चिन्तामणि पहला भाग में संगृहीत लेख कविता क्या है में सौन्दर्यवादी काव्य दृष्टि को उड़ाते हुए उन्होंने लिखा है, 'भारतीय कला समीक्षा में यह (सौन्दर्य) एक बड़ी ऊंची उड़ान या दूर की कौड़ी समझी गई है पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़झाले के सिवा और कुछ नहीं' सौन्दर्यशास्त्र काव्य को कलाओं में सम्मिलित मानते हुए उसके सर्जनात्मक उत्कर्ष को विचार के केन्द्र में रखता है आचार्य शुक्ल ने 'रसात्मक बोध के विविध रूप' शीर्षक लेख में काव्य चर्चा के अन्तर्गत 'कला' शब्द के प्रयोग पर आपत्ति की है कला शब्द के प्रभाव कविता का स्वरूप तो हुआ सजावट या तमाशा और उद्देश्य हुआ मनोरंजन या मन बहलाव यह 'कला शब्द आजकल हमारे यहां भी साहित्य चर्चा में बहुत जरूरी सा हो रहा है इससे न जाने कब पीछा छूटेगा"

इतना ही नहीं, 'श्रद्धा भक्ति' शीर्षक निबंध में उन्होंने विभिन्न कलाओं की अभ्यासज य सूक्ष्मता का उपहास किया है स्थापत्य के क्षेत्र में बारीक कारीगरी को लेकर उन्होंने लिखा है, "समझने की बात है कि इमारत हाथ पर रखकर देखने की चीज नहीं है, दस पांच हाथ दूर पर खड़े होकर देखने की चीज है" चित्रकला की बारीकी की खिल्ली उड़ाने के लिए उन्होंने राधाकृष्ण के सूक्ष्मतापूर्ण चित्र का एक कल्पित उदाहरण सामने रखकर लिखा है, "देखनेवाले को यह नहीं जान पड़ता कि वह कुछ दूर खड़ा होकर कदम्ब और राधाकृष्ण को एकसाथ देख रहा है, बल्कि यह जान पड़ता है कि कभी तो पत्तियां गिनने के लिए वह पेड़ पर चढ़ता है और कभी नमूना लेने के लिए चुनरी हाथ में लेता है' संगीत का उल्लेख उन्होंने और भी उपहासपूर्ण स्वर में किया है "संगीत के पेंच-पाच देखकर भी हठयोग याद आता है जिस समय कोई कलावन्त पक्का गाना गाने के लिए आठ अंगुल मुंह फैलाता है और 'आ आ' करके विकल होता है, उस समय बड़े बड़े धीरों का धैर्य छूट जाता है—दिन दिन भर चुपचाप बैठे रहने वाले बड़े-बड़े आलसियों का आसन डिग जाता है"

शुक्लजी की ये टिप्पणियां विनोदपूर्ण होते हुए भी बहुत तीखी हैं कला प्रेमियों को क्षुब्ध करने के लिए ये पर्याप्त हैं फिर भी इनसे यह प्रकट नहीं होता कि आचार्य शुक्ल को कलासौन्दर्य में रुचि नहीं थी या वे उसका सम्मान नहीं करते थे उनकी इन उक्तियों के आधार पर यह भी नहीं कहा जा सकता कि वे काव्य में कलात्मकता को महत्व नहीं देते थे या काव्य में सौन्दर्य की प्रतिष्ठा के विरुद्ध थे उनके इन शब्दों से इतना ही प्रकट होता है कि वे कलाभ्यास और सर्जनशीलता में फर्क करते थे और कारीगरी और कला को दो अलग चीजें मानते थे काव्य का मूल्य अन्य कलाओं के मूल्य के समान रूप समृद्धि में मानने के भी विरुद्ध वे थे कला की स्वायत्तता सम्बन्धी पाश्चात्य धारणा भी उन्हें स्वीकार्य नहीं थी कला की जीवन-निरपेक्षता की धारणा उन्हें फूटी आंख नहीं सुहाती थी

चिन्तामणि, पहला भाग में संगृहीत 'कविता क्या है ?' शीर्षक लेख में शुक्लजी ने स्पष्ट शब्दों में सौन्दर्य के साथ "कवि कर्म के सम्बन्ध पर प्रकाश डाला है उनका कहना है कि कवि की दृष्टि तो सौन्दर्य की ओर जाती ही है चाहे वह जहां हो—वस्तुओं के रूप रंग में अथवा मनुष्यों के मन, वचन और कर्म में' उत्कर्ष साधन के लिए, प्रभाव की वृद्धि के लिए, कवि लोग कई प्रकार के **सौंदर्यों** का मेल किया करते हैं' 'काव्य में लोकमंगल और माधुर्य शीर्षक लेख में भी इस प्रकार की मान्यता के दर्शन होते हैं कवि **सौन्दर्य** से प्रभावित रहता है और दूसरों को प्रभावित करना चाहता है किसी रहस्यमयी प्रेरणा से **उसकी कल्पना में** कई प्रकार के **सौन्दर्य** का जो मेल आपसे आप हो जाया करता है उसे पाठक के सामने भी वह प्रायः रख देता है ।" शुक्लजी

ने काव्य के विधानगत सौन्दर्य की चर्चा भी की है सुधाकर पांडेय द्वारा सम्पादित आचार्य शुक्ल प्रतिनिधि निबन्ध में सम्मिलित 'कविता क्या है' शीर्षक लेख में उन्होंने काव्य सौन्दर्य के दो पक्षों—भाव सौन्दर्य और नाद सौन्दर्य—का उल्लेख किया है

लगता यह है कि शुक्लजी ने काव्य से सौन्दर्य के सम्बन्ध को अमान्य न कर कला और सौन्दर्य के साथ काव्य के उस सम्बन्ध-निरूपण का विरोध किया है जो उन्हें पश्चिम में और वहां के प्रभावस्वरूप रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि की साहित्य दृष्टि में लोकमंगल की उपेक्षा करता प्रतीत हुआ था काव्यास्वाद को सौन्दर्यानुभूति मानने में उन्हें यह खटका हुआ कि काव्य उपभोग्य बन कर रह जा सकता है इस खतरे से सावधान करते हुए उन्होंने 'काव्य में लोकमंगल और माधुर्य' शीर्षक लेख में लिखा, "यह न समझना चाहिए कि उपभोग पक्ष की तुष्टि ही काव्य का एकान्त लक्ष्य है रसात्मक तुष्टि का क्षेत्र उपभोग वृत्ति से और आगे जाता है" दूसरी बात यह है कि तालस्तॉय, जिन्हें वे कलावादी मानते थे, काव्य में प्रेम के ही सौन्दर्य के कायल थे शुक्लजी इस प्रकार की भाव सौन्दर्य परिमिति के विरुद्ध थे उन्होंने संघर्ष की भीषणता में भी सौन्दर्य की सत्ता मानी है इसी नाते अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि शेली की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा है, "शेली ने भी काव्य-कला का मूल तत्व प्रेम भाव ही माना था पर अपने को सुख सौन्दर्यमय माधुर्य भाव तक ही बद्ध न रखकर प्रबन्ध क्षेत्र में भी अच्छी तरह घुसकर भावों की अनेकरूपता का विन्यास किया था स्थिर (static) सौन्दर्य और गत्यात्मक सौन्दर्य, उपभोग पक्ष और प्रयत्न पक्ष, दोनों उनमें पाये जाते हैं"

लेकिन सौन्दर्य सृष्टि के नाम पर अद्भुत, अपूर्व, अद्वितीय, विचित्र और विलक्षण की रचना उन्हें साधारणीकरण में बाधक प्रतीत होती थी, इसलिए उन्होंने ऐसी रचनाओं का विरोध किया है पश्चिमी सौन्दर्य चिन्तकों की दृष्टि में 'असामान्य' की प्रतिष्ठा का विरोध करते हुए उन्होंने विचार प्रकट किया है कि "असामान्यता या चमत्कार के रुचि वाले कवि बाह्य प्रकृति का चित्रण उसकी असाधारण विभूति को—उसकी चमक दमक, सजावट, वैचित्र्य अनोखेपन इत्यादि को ही—लेकर चलते हैं इसी रुचि को बहुत से लोग कला रुचि मानते हैं उनके मत से जगत् के साधारण और असाधारण के बीच से असाधारण और रुचिर को छांट छांट कर सजाना ही और कलाओं के समान ही काव्य कला का भी काम है × × × काव्य का यह असामान्यतावाद धीरे-धीरे उस लोकोत्तरवाद तक पहुंचा जिसका प्रतिपादन काव्य को आध्यात्मिक क्षेत्र में ले जाने के लिए किया गया × × × विभाव पक्ष में शोभन और दीप्त को चुनकर उनकी असामान्य योजना द्वारा अद्भुत रंजन की सामग्री तैयार करना काव्य में कलावाद के नए और पुराने अनुयायियों का लक्ष्य रहा है"

सौन्दर्यमूलक काव्य-दृष्टि की परिणति अन्तत रचना की स्वायत्तता की प्रतिष्ठा मे होती है जो शुक्लजी को स्वीकार्य नहीं थी इसे उन्होंने 'नूतन निर्माण वाली कल्पना' कह कर इसका प्रतिवाद किया है इसे लेकर वे डटन के विरुद्ध उठ खडे हुए हैं–"ऐसी मनोवृत्ति या प्रदर्शन जो किसी दशा मे किसी की नहीं हो सकती, केवल ऊपरी मन बहलाव के लिए खडा किया हुआ कृत्रिम तमाशा ही होगा पर डटन साहब के अनुसार ऐसी मनोवृत्ति का चित्रण नूतन सृष्टिकारिणी कल्पना का सबसे बडा उज्ज्वल उदाहरण होगा' ('साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद')

'नूतन सृष्टि के निर्माण' का विरोध करने की एक परिणति यह हुई है कि शुक्ल जी ने काव्य मे सौन्दर्य की सत्ता मुख्यत रचना या सर्जन मे न मानकर 'सामग्री' मे मानी है काव्य के प्रसग म सौन्दर्य की चर्चा उन्होंने अधिकाशत वर्ण्य विषय के सौन्दर्य के सम्बन्ध से की है आचार्य शुक्ल प्रतिनिधि निबन्ध म सकलित 'कविता क्या है?' लेख के द्वितीय अनुच्छेद म प्राकृतिक और मानवीय सौन्दर्य पर मुख्यत क सम्बन्ध मे शुक्लजी ने सौन्दर्य के अधिष्ठानो की जो सूची दी है उससे तो यह प्रकट होता ही है कि कविता मे किस प्रकार की विषय वस्तु सौन्दर्य भावना की तुष्टि करती है, इसके अतिरिक्त भी अनेक स्थानो पर उन्होंने काव्य सौन्दर्य की चर्चा विषय वस्तु-सम्बन्धी सौन्दर्य की दृष्टि से की है उनका कहना है कि "कविता सृष्टि-सौन्दर्य का अनुभव कराती है और सुन्दर वस्तुओ मे अनुरक्त और कुत्सित वस्तुओ से विरक्त करती है कविता जिस प्रकार विकसित कमल, रमणी के मुख आदि का सौन्दर्य चित्त म अकित करती है उसी प्रकार औदार्य, वीरता, त्याग, दया इत्यादि का सौन्दर्य भी दिखाती है' काव्य मे लोकमगल और माधुर्य नामक लेख मे भी इस दृष्टिकोण का समर्थन मिलता है "भीषणता और सरलता, कोमलता और कठोरता कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामञ्जस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य है आदिकवि वाल्मीकि की वाणी इसी सौन्दर्य के उद्घाटन महोत्सव का दिव्य संगीत है सौन्दर्य का यह उद्घाटन असौन्दर्य का आवरण हटाकर होता है"

वस्तु म सौन्दर्य की प्रतिष्ठा का विस्तार मगल भावना म सौन्दर्य के साक्षात्कार तक हुआ है लोकमगल की साधना के लिए किये जाने वाले सघर्ष म शुक्लजी ने सौन्दर्य के दर्शन किए हैं, उनके विचारानुसार मनुष्य के शरीर के जैसे दक्षिण और वाम दो पक्ष हैं वैसे ही उसके हृदय के भी कोमल और कठोर, मधुर और तीक्ष्ण, दो पक्ष हैं और बराबर रहेंगे काव्य कला की पूरी रमणीयता इन दोनो पक्षो के समन्वय के बीच मगल या सौन्दर्य के विकास मे दिखाई पडती है' (काव्य मे लोकमगल और माधुर्य) उन्होंने इस धारणा का प्रतिवाद किया है कि "काव्य मे लोकमगल के विधान से उपदेशात्मकता या नीरसता आती है काव्य मे सघर्ष की सफलता उपदेश या शिक्षावाद

से मुक्त रहती है क्योंकि उसका अंकन 'कम सौंदर्य' के रूप में होता है।' शुक्लजी अपने शब्दों में, "कवि कर्म-सौंदर्य के प्रभाव द्वारा प्रवृत्ति या निवृत्ति अन्त प्रकृति उत्पन्न करता है, उसका उपदेश नहीं देता।' इसलिए "मंगल अमंगल के द्वन्द्व में क लोग अन्त में मंगल शक्ति की जो सफलता दिखा दिया करते हैं उसमें शिक्षाव (Didacticism) या अस्वाभाविकता की गंध समझ कर नाक भौं सिकोड़ना ठीक नहीं काव्य में यदि कभी मंगल शक्ति का पराभव देखने में आए तो भी सौन्दर्य अक्षु रहता है क्योंकि "गति में भी सुन्दरता है और सफलता में भी। यह बात नहीं कि जब यह गति सफल होती है तभी इसमें सुन्दरता आती है।' ('काव्य में लोक मं और माधुर्य')

काव्य में लोकमंगल का समावेश सदा न सही कई बार शिक्षावाद और उपदेश परिणत होकर उसके सौंदर्य की क्षति करता है—शुक्लजी ने यह अस्वीकार न किया है, बल्कि यह बतलाया है कि ऐसा किस स्थिति में होता है। उनका विचार है अस्वाभाविकता तभी आएगी जब बीच का विधान ठीक नहीं होगा" ('काव्य लोकमंगल और माधुर्य') यहां शुक्लजी ने काव्य सौन्दर्य के विषय में यह स्वीक किया है कि काव्य में विषय वस्तु का अपना सौंदर्य 'बीच के विधान' पर बहुत-कु निर्भर रहता है। वस्तु सौन्दर्य की प्रतीति तभी होगी जब बीच का विधान' ठीक होग अन्यथा विषय-वस्तु की सुन्दरता व्यक्त न हो पाने का खतरा पैदा हो जाएगा। महत्वपूर्ण बिन्दु को शुक्लजी ने यहां एक वाक्य में चलता कर दिया है। उस पर य जितने विस्तार से लिखना चाहिए था, नहीं लिखा है। इसका कारण शायद यह है उनकी रुचि मुख्य रूप से वस्तु सौन्दर्य में थी विधानगत सौन्दर्य में नहीं। शुक्लजी काव्य में कल्पना की भूमिका को यदि समुचित महत्व दिया होता तो वे विधान सौन्दर्य को गौण नहीं मानते। यह मानते हुए भी कि 'काव्य-वस्तु का सारा रूप विध कल्पना की क्रिया से होता है," उन्होंने कल्पना के कार्य को प्रस्तुत और अप्रस्तुत विधान में विभाजित कर दिया है। कल्पना की संश्लिष्टता प्रस्तुत अप्रस्तुत जैसे विभाग का अतिक्रमण कर सकती है—यह बात शुक्लजी के ध्यान में होते हुए भी उन्हें स्वीक नहीं थी। जहाँ वे अलंकारों को शब्दों सजावट की चीज मानते रहे वहीं 'रूप' की मूर्ति का सम्प्रेषण का साधन मानकर चले। कवि की कल्पना स्वप्न के निकट पहुंच सकती इस सम्भावना को अस्वीकार न करते हुए भी शुक्लजी इस सम्भावना के निहितार्थ स्वीकार नहीं कर पाए हैं। उन्होंने लिखा है कि 'काव्य सर्वथा स्वप्न के रूप की व नहीं है। स्वप्न के साथ यदि उसका कोई मेल है तो केवल इतना ही कि स्वप्न हमारी बाह्य इन्द्रियों के सामने नहीं रहता और काव्य वस्तु भी।" स्पष्ट है कि स्व और कल्पना का यह सादृश्य बहुत स्थूल और सतही है। दोनों तरह का अतिक्रमण जो अपूर्व दृश्य उपस्थित करते हैं वह शुक्लजी को अमान्य था। इसलिए उन्होंने कल्प

को प्रत्यक्ष जगत् की परछाईं मानने पर जोर दिया उनके मतानुसार "प्रत्यक्ष रूपविधान के उपादान से ही कल्पित रूपविधान होता है" प्रत्यक्ष रूपविधान का आधार लेते हुए भी कल्पित रूपविधान तर्क का अतिक्रमण कर अनमेलाभासी रूप में ढल सकता है और उस स्थिति में वह काव्य के काम की चीज बना रह सकता है, शुक्लजी यह मानने को तैयार नही जान पडते काव्य में असंगताभासी कल्पना की सम्भावना को लक्ष्य कर उन्होंने लिखा है-"इन ढांचो को लेकर हम विलक्षण रंगरूप की वस्तुएं खडी कर सकते हैं, पर यह स्पष्ट समझ रखना चाहिए कि उन वस्तुओं का रूप-रंग प्रकृति से जितना ही दूर घसीटा जाएगा उतनी वे वस्तुएं कल्पना मे कम देर टिकेंगी घोडे के मुंह वाले किन्नर, पुखराज की चट्टानो और सोने की रेत के बीच बहती हुई नदियां आग के बने हुए शरीर एक क्षण के लिए मन में आ सकते हैं पर सोने की चिडियो की तरह चट उड जायेंगे' ('काव्य का रूपविधान और कल्पना') शुक्लजी की दृष्टि में काव्य के काम की कल्पना वही है जो 'सच्ची और गहरी अनुभूति' उत्पन्न कर सके उन्होंने लिखा है कि काव्य के प्रयोजन की कल्पना वही होती है जो हृदय की प्रेरणा से प्रवृत्त होती है और हृदय पर प्रभाव डालती है (काव्य का रूप-विधान और कल्पना)

कल्पना को नूतन-सृष्टि के निर्माण की दृष्टि से महत्व न देकर शुक्लजी ने उसे प्रत्यक्ष जीवन की अनुगामिनी माना, इससे उन्हे काव्य सौन्दर्य का रहस्य "मूल और आदिम भावों के उद्घाटन मे दिखलाई दिया 'भाव' शीर्षक लेख मे उन्होने लिखा है कि सभ्यता का विकास होने के फलस्वरूप "उत्तेजित क्रोध आदि को भी अपना रूप कुछ बदलना पडता है—वह भी कुछ कपडे लत्ते आदि पहनकर समाज मे आता है जिसमे मारपीट, छीन खसोट आदि भद्दे समझे जाने वाले व्यापारो का कुछ निवारण होता है × × × पर यह प्रच्छन्न रूप उतना ममस्पर्शी नही हो सकता इसीसे इस प्रच्छन्नता का उद्घाटन काव्य का एक मुख्य काम है" चिंतामणि, पहला भाग में सकलित 'कविता क्या है ?' शीर्षक लेख में तो वे यहा तक कह गए हैं, "आदिम रूपो और व्यापारों मे, वंशानुगत वासना की दीर्घ परम्परा के प्रभाव से, भावो के उद्बोधन की गहरी शक्ति संचित है, अत इनके द्वारा जैसा रस परिपाक सम्भव है वैसा कल कारखाने गोदाम, स्टेशन, ऐंजिन, हवाई जहाज ऐसी वस्तुओ तथा अनाथालय के लिए चक काटना, सर्वस्व हरण के लिए जाली दस्तावेज बनाना मोटर की चरखी घुमाना या एन्जिन में कोयला झोंकना आदि व्यापारो द्वारा नही"

इस दृष्टिकोण का विस्तार इस सीमा तक हुआ है कि रूप की काव्य-प्रेरणा शक्ति का स्रोत भी शुक्लजी को उसके 'आदिम' होने मे दिखलाई दिया है, 'जिन रूपों और व्यापारों से मनुष्य आदिम युगों से ही परिचित है, जिन रूपो और व्यापारो को

सामने पाकर वह नर-जीवन के प्रारम्भ से ही लुब्ध और क्षुब्ध होता आ र उनका हमारे भावो के साथ मूल या सीधा सम्बन्ध है अत काव्य के प्रयोजन के हम उन्हे मूल रूप और मूल व्यापार कह सकते हैं इस विशाल विश्व के प्रत्यक्ष प्रत्यक्ष और गूढ से गूढ तथ्यो को भावो के विषय या आलम्बन बनाने के लिए मूल रूपो और मूल व्यापारो मे परिणत करना पडता है जब तक वे इन मार्मिक रूपो में नहीं लाए जाते तब तक उन पर काव्य-दृष्टि नही पड ('कविता क्या है ?', चिन्तामणि, पहला भाग),

'रसात्मक बोध के विविध रूप' में शुक्लजी ने यह स्वीकार किया है 'मनोवृत्तियो या भावो की सुन्दरता, भीषणता आदि की भावना भी रूप होकर मे उठती है" इसके आगे नूतन सृष्टि के निर्माण की बात उन्होने नही मानी उपयुक्त लेख में अनुभूति से कल्पना की स्वतन्त्रता की चर्चा पूर्वपक्ष के रूप में ही गई है

'ऊपर गिनाए हुए तीन प्रकार के रूप विधानो मे से अन्तिम (कल्पित) ही का समीक्षको और साहित्य मीमासको के विचार क्षेत्र के भीतर लिए गए और कि जाते हैं बात यह है कि काव्य शब्द व्यापार है वह शब्द सकेतो द्वारा अन्तस मे वस्तुओ और व्यापारो का मूर्ति विधान करने का प्रयत्न करता है जहा तक काव्य की प्रक्रिया का सम्बन्ध है वहा तक रूप और व्यापार कल्पि होते हैं कवि जिन वस्तुओ और व्यापारो का वर्णन करने बठता है, वे समय उसके सामने नही होते कल्पना मे ही होते हैं ऐसी दशा मे स्वाभाविक ही था कि कवि कर्म का निरूपण करनेवालो का ध्य रूप-विधान के कल्पना पक्ष पर ही रहे, रूपो और व्यापारो के प्रत्य बोध और उससे सम्बद्ध वास्तविक भावानुभूति की बात अलग ही रह जाए"

शुक्लजी काव्य मे कल्पना की प्रतिष्ठा के पक्ष मे नही थे, यह बात उनके इस लेख मे प्राप्त इस वाक्य से भी प्रकट होती है, "आजकल तो भाव की बात दब सी र है क्योकि कवि की नूतन सृष्टि इसी (कल्पना) की कृति समझी जाती है' कल्पना प अधिक बल देने से कला या काव्य की स्वायत्तता के प्रतिपादन का रास्ता खुल जात है, जो शुक्लजी को स्वीकार नही था इस स्थिति की सम्भावना का विरोध करते सम उनकी वाणी व्यग्य से तीखी हो उठी है, 'जिस प्रकार प्रत्यक्ष अनुभूति कलानुभूति या काव्यानुभूति को एकदम अलग कहने की चाल योरप मे चल उसी प्रकार प्रत्यक्ष रूप विधान से कल्पित रूप-विधान को असम्बद्ध घोषित करने

की रूढि प्रतिष्ठित हुई कल्पना की एक निराली दुनिया कही जाने लगी और कवि लोग दूसरी सृष्टि बनाने वाले विश्वामित्र हुए"

काव्य वस्तु की अद्वितीयता के भाव को शुक्लजी ने व्यक्ति वैचित्र्य कहते हुए उसे काव्य के वण्य के साथ तादात्म्य की अनुभूति की तुलना मे हीन माना है उन्होने कहा है कि "शील विशेष के परिज्ञान से उत्पन्न भाव की अनुभूति और आश्रम के साथ तादात्म्य दशा की अनुभूति (जिसे आचार्यों न रस कहा है) दो भिन्न कोटि की रसानुभूतिया हैं" दोनो प्रकार की रसानुभूतियो मे उन्होने जो भिन्नता बतलाई है उससे स्पष्ट हो जाता है कि वास्तविक रसानुभूति का सम्बन्ध तादात्म्य की स्थिति से है, अद्वितीयता की अनुभूति से नहीं शील वचित्र्य और उदात्तवृत्ति वाले पात्रों के साक्षात्कार मे भिन्नता यह रहती है कि "प्रथम में श्रोता या पाठक अपनी पृथक् सत्ता अलग सभाले रहता है, द्वितीय में अपनी पृथक् सत्ता का कुछ क्षणो के लिए विसजन कर आश्रम की भावात्मक सत्ता में मिल जाता है" भाव व्यजना के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए उन्होने उसे **मध्यम कोटि की रस दशा** कहा है, "किसी भाव की व्यजना करने वाला, कोई क्रिया या व्यापार करने वाला पात्र भी शील की दृष्टि से श्रोता (या दशक) के किसी न किसी भाव का—जसे श्रद्धा, भक्ति, घृणा रोष, आश्चय, कुतूहल या अनुराग का आलम्बन होता है इस दशा में श्रोता या दशक उसी भाव का अनुभव नही करता जिसकी व्यजना पात्र अपने आलम्बन के प्रति करता है,बल्कि व्यजना करन वाले उस पात्र के प्रति किसी और भाव का अनुभव करता है यह दशा भी एक **प्रकार की** रस दशा ही है पर इस रसात्मकता को हम मध्यम कोटि का ही मानेंगे'

शील वैचित्र्य का भान उसके व्यजक पात्र के साथ पाठक या दशक का तादात्म्य नही होने देता, इसलिए उसके साधारणीकरण का प्रश्न ही नही उठता जबकि शुक्लजी ने काव्य की जो परिभाषा की है उसका के द्र बि दु 'साधारणीकरण' है **चिन्तामणि, पहला भाग** के कविता क्या है ?' लेख में उन्होने कविता को परिभाषित करते हुए लिखा है, 'जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था' रस दशा कहलाती है हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं" काव्य के प्रति इस अभिगम में नूतन सृष्टि का निर्माण करने वाली कल्पना के उत्कष का न खप सकना स्वाभाविक ही था

लेकिन 'आत्मा की मुक्तावस्था के सादृश्य पर 'हृदय की मुक्ति की साधना की परिकल्पना में आध्यात्मिकता की जो गध आती हैं वैसा कुछ भी शुक्लजी की सिद्धात व्यवस्था में नहीं था शुक्लजी की दृष्टि में हृदय की मुक्ति का अभिप्राय पाठक या

दशक या लोक सामान्य की भूमि पर पहुंच जाता है, 'कविता मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के सकुचित मण्डल से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भूमि पर ले जाती है जहाँ जगत् की नाना गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का सचार होता है इस भूमि पर पहुंचे हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता वह अपनी सत्ता को लोकसत्ता मे विलीन किए रहता है उसकी अनुभूति सब की अनुभूति होती या हो सकती है"

सही बात यह है कि काव्य या कला की चर्चा मे 'अध्यात्म' का हस्तक्षेप शुक्लजी को पसन्द नहीं था काव्य मे लोकमगल और माधुर्य' शीर्षक लेख म उन्होने स्पष्ट शब्दो म कहा है– 'अध्यात्म' शब्द की मेरी समझ म काव्य या कला के क्षेत्र मे कोई जरूरत नही है"

इस दृष्टि से शुक्लजी ने रस सिद्धान्त को एक महत्वपूर्ण मोड देते हुए कल्पना और बिम्बग्रहण से—इस प्रकार काव्य के रूप पक्ष से—रस का सम्बध उद्घाटित किया कल्पना सृष्टि की स्वायत्तता का विरोध करते हुए भी उन्होने इस बात पर जोर दिया है कि "हृदय के मर्मस्थल का स्पर्श तभी होता है जब जगत् या जीवन का कोई सुन्दर रूप, मार्मिक दशा या तथ्य मन म उपस्थित होता है ('काव्य का रूप विधान और कल्पना) यह मानते हुए भी कि "रस और भाव ही कविता के प्राण हैं," उन्होने यह कहा है कि 'कविता म कही गई बात चित्र रूप मे हमारे सामने आती है सकेत रूप म नही अत उसमे गोचर रूपो का ही विधान अधिकतर होता है' ('कविता क्या है ? आचार्य शुक्ल प्रतिनिधि निबन्ध) चिन्तामणि, पहला भाग म सगृहीत कविता क्या है ?' लेख से शुक्लजी का यह वाक्य बहुधा उद्धृत रहा है, "काव्य मे अर्थ ग्रहण मात्र से काम नही चलता, बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है" लेकिन इस प्रकार के वाक्यो से इस भ्रम मे नही पडना चाहिए कि शुक्लजी कल्पना या बिम्ब को सीधे उसी की हैसियत से मान देते थे इस सम्बध म उनके इन वाक्यो को याद रखना होगा, 'योरपीय साहित्य मीमांसा म कल्पना को बहुत प्रधानता दी गई है है भी यह काव्य का अनिवार्य साधन, पर है साधन ही, साध्य नहीं' (उपर्युक्त) प्रसाद और सुमित्रानन्दन पत की कविता म लाक्षणिक प्रयोगो के अनेक उदाहरण देकर शुक्लजी ने यह समझाया है कि अभिव्यक्ति की वक्रता के मूल म कल्पना ही काम करती है सिद्धान्तत उन्होने यह प्रतिपादित किया है कि भाषा-शैली को अधिक मार्मिक और चमत्कारपूर्ण बनाने म भी कल्पना ही काम करती है' साधन रूप म कल्पना को पूरा मान देते हुए उन्होने लिखा है, 'काव्य की पूर्ण अनुभूति के लिए कल्पना का व्यापार कवि और श्रोता दोनो के लिए अनिवार्य है' (रसात्मक बोध के विविध रूप')

शुक्लजी के सौन्दर्यशास्त्र के प्रमुख पक्षों को आलोकित करने पर यह प्रतीत होता है कि उन्होंने भारतीय रस सिद्धान्त और पाश्चात्य कल्पना सिद्धान्त को परस्पर मिलाने का प्रयत्न किया है इसके लिए उन्होंने रस सिद्धान्त को अध्यात्म से हटाकर विशुद्ध मानवीय भूमि पर स्थापित किया है और कल्पना की स्वायत्त सृष्टि का निषेध करते हुए रसानुभूति के साधन रूप मे उसकी अनिवार्यता का प्रतिपादन किया है

समन्वय के प्रयत्न के बावजूद शुक्लजी भारतीयता की ओर झुके हुए जान पडते हैं अपने लेखो म उन्होंने 'हमारे यहां' का उल्लेख रह रह कर किया है इसी आग्रह के फलस्वरूप उन्होंने काव्य को कला मानने से भी कहीं कहीं इनकार किया है 'काव्य का रूप विधान और कल्पना' म कलाओं के कामवासना सम्बधी सिद्धान्त के सन्दर्भ मे उन्होंने लिखा है –

"उपर्युक्त सिद्धान्त का ही एक अग काम वासना का सिद्धान्त है जिसके अनुसार काव्य का सम्बध और कलाओ के समान काम वासना की तृप्ति से है यह मत काव्य को ललित कलाओ मे गिनने का परिणाम है कलाओ के सम्बध मे जिनका लक्ष्य केवल सौन्दर्य की अनुभूति उत्पन्न करना है यह मत कुछ ठीक कहा जा सकता है इसी से चौंसठ कलाओं का उल्लेख हमारे यहा कामशास्त्र के भीतर हुआ है पर काव्य की गिनती कलाओं में नही की गई है"

लेकिन शुक्लजी भारतीय चिन्तन परम्परा से बधे नहीं हैं काव्य को कला मानने या न मानने के विषय म अपना मन स्थिर करने से पूर्व 'कला' के विषय मे भारतीय और पाश्चात्य अवधारणाओं का अन्तर समझ लेने के बाद उन्होंने अपना मत निश्चित किया है, यदि 'कला' का वही अर्थ लेना है जो कामशास्त्र की चौंसठ कलाओं म है—अर्थात् मनोरंजन या उपभोग मात्र का विधायक तो काव्य के सम्बध म दूर ही से इस शब्द को नमस्कार करना चाहिए' इस परम्परागत अर्थ को अस्वीकार कर शुक्लजी ने काव्य को कला माना है डटन ने शक्ति काव्य और कला काव्य म जो भेद किया था, उसे अस्वीकार कर उन्होंने लिखा–"वास्तव मे कला की दृष्टि दोनो प्रकार के काव्यों म अपेक्षित है साधनावस्था या प्रयत्न पक्ष को लेकर चलने वाले काव्यों में भी यदि कला में चूक हुई तो लोकमति को परिचालित करने वाला स्थायी प्रभाव न उत्पन्न हो सकेगा" (काव्य मे लोकमंगल और माधुर्य) कला के कामशास्त्र सम्मत अर्थ का अतिक्रमण कर शुक्लजी ने 'काव्य-कला' जैसे पद का प्रयोग एकाधिक बार किया है, जो पिछले पृष्ठों में दिए गए उद्धरणों में से कुछ में उपलब्ध है

परम्परा का अतिक्रमण उनके रस सिद्धान्त में भी दिखलाई देता है, जहा उन्होंने 'रस' का अस्तित्व काव्य में परिबद्ध न मान कर लोक में भी माना है 'रसात्मक बोध के विविध रूप' में रस को लोकोत्तर मानने के विषय में उनकी असहमति बहुत स्पष्ट है

इसी प्रकार कलावाद की अस्वीकृति भी उनके सौन्दर्यशास्त्र में मुखर सामने आई है जीवन निरपेक्ष और अपने आप में पूर्ण कल्पना सृष्टि को व काव्य का सम्मान देने को तैयार नहीं हुए हैं उनकी अनेक स्थापनाओं के मूल में कलावाद का निषेध अन्तर्निहित है, लेकिन इस निषेध की सर्वाधिक मुखर परिणति नैतिकता में सौन्दर्य के विस्तार में दिखाई देती है जिसका सबसे भास्वर रूप काव्य में लोकमंगल की स्थापना है

आचार्य शुक्ल का सौन्दर्यशास्त्र इस बात का प्रमाण है कि परम्परा चाहे कितनी ही समृद्ध हो, वह दृष्टिकोण की स्वतन्त्रता का अपहरण नहीं कर सकती प्रतिभाशाली चिन्तक परम्परा में काट छांट करते हुए उसके बल पर आगे बढ़ता है और स्वयं आगे बढ़ते हुए परम्परा को भी आगे ले जाता है कई बार एकाधिक परम्पराएँ भी उसकी सिद्धान्त-व्यवस्था में एकान्वित हो जाती हैं शुक्लजी का सौन्दर्यशास्त्र इसका जीवन्त उदाहरण है

56, गोल्फ कोर्स, जोधपुर

राममूर्ति त्रिपाठी

हिन्दी साहित्य को आचार्य शुक्ल की देन

शुक्ल जी के समस्त साहित्य के सम्यक् परिशीलन से यह स्पष्ट होता है कि वे आचार्य पहले हैं और समालोचक बाद में। द्विवेदी युग में भाषा के क्षेत्र में महावीर प्रसाद द्विवेदी और संप्रेष्य सामग्री तथा दृष्टिकोण के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपनी पूरी चेतना से सक्रिय थे। भाषा का सीन साफ एवं दुरुस्त कर रहा था–मानस को स्वस्थ शिक्षा देने का उत्तरदायित्व दूसरा निबाह रहा था। इस तरह यह युग आधुनिक हिन्दी साहित्य का आचार्य युग कहा जा सकता है। आचार्य चरम सत्य के संदर्भ में युग सत्य का साक्षात्कार करता है–तत्कालीन समस्याओं से अवगत होता है और तदनुरूप दर्शन देता है। शुक्ल जी मानते हैं कि जो अभेद के जितना ही समीप पहुँचता है–वह सत्य के उतना ही समीप पहुँचता है अर्थात् चरम सत्य अध्यात्मा है–जो गोचर जगत् की अपेक्षा में 'अव्यक्त' है। व्यक्त जगत उसमें निहित आकर्षण अपकर्षणमयी शक्ति का ही रूपान्तरण है– फलत उसी की भाँति यह भी असीम सत्य किन्तु प्रवाहनित्य है। मूलशक्ति रज से प्रवर्तित परस्पर विरोधी गुणों–सत्य तथा तम् की समष्टि है। इसके कारण व्यक्त गोचर

जगत् या व्यवहार जगत् अमंगलमय तथा मंगलमयी संभावना की ओर गतिशील रहता है सत्व का प्राधान्य और शासन होने पर मंगलमय-रक्षण, स्थिति और रंजन की ओर तथा तम प्राधान्य होने पर अमंगलमय अरक्षा, दुरवस्था तथा अधोगति-की ओर व्यक्त जगत का प्रवाह रहता है शुक्ल जी यही का परमार्थ दर्शन है वे अद्वैतवादी होते हुए भी शंकराचार्य की भांति जगत् को असत्य नहीं मानते उनका मत न श्री नन्द दुलारे वाजपेयी द्वारा संभावित स्पिनोजा का 'पथेज्म' भी नहीं है-क्योंकि उनकी चिंतनधारा में सत्व रज तम की कोई बात नहीं है शुक्ल जी का जगत् के सम्बन्ध में रवीन्द्र विरूप परिणाम सांख्य सम्मत है-फिर भी वे सांख्य की भांति द्वैतवादी नहीं हैं

वे यह भी नहीं मानते कि जगत् का भौतिक तथा मानसिक समस्त व्यापार एकबारगी विश्वात्मा की इच्छा से व्यक्त हो जाता है विपरीत इसके वे मानते हैं कि जगत की भौतिक और मानसिक व्यापार एक से अनेक की ओर, सरलता से जटिलता की ओर क्रमशः विकसित हुए हैं इस प्रकार विकासवाद में आस्थाशील होकर भी मानव स्तर पर डार्विन के 'योग्यतमावशेष' के सिद्धांत स्वीकार नहीं करते, विपरीत इसके परस्पर की परस्पर साहाय्यवृत्ति को मानते हैं वे मानते हैं कि वे मनुष्य का प्रवर्तक भाव विश्वात्मा की इच्छा से पराधता की संभावना से आपूरित है इससे स्पष्ट है कि उन्हें जड़वाद में विश्वास नहीं है, पंडित नेहरू के शब्दों में सोचा जाय तो शुक्ल जी आधुनिक मानस की उत्तम परिणति है-क्योंकि आधुनिक मानस मध्यकालीन साम्प्रदायिक रूढ़ियां और रहस्यवाद में विश्वास नहीं रखता, विपरीत इसके वह समाज की सम उन्नति और लोक मंगलोपयोगी व्यावहारिकता में ज्यादा निहित रहता है

उनकी दृष्टि में व्यवहार या व्यक्त जगत का मर्म ही साध्य है- उसी में व्यष्टि मानव अपनी अस्मिता या स्व(मानव) भाव(ता) की चरितार्थता पाता है यही मानव की उर्ध्वगामी रचनात्मक यात्रा है- व्यष्टि सत्ता का समष्टि सत्ता में लय की मुक्ति है तन्मय रागात्मक सत्य का विकास साधन है-इसी के विकास से व्यक्ति सत्ता अशेष विश्व के साथ रागात्मक संबंध कर पाती है और व्यक्तिगत राग द्वेष की रज्जु से अंततः मुक्त कर पाती है शुक्ल जी का विश्वास है कि जगद्धारक विश्वात्मा सत्चित आनंदमय है सत् का अर्थ होता है ही अच्छा मंगलमय होना भी है यही सदंश व्यक्त होकर जगत् का धारण करता है इसीलिए शुक्ल जी ब्रह्म के सदंश की व्यक्त प्रवृत्ति का नाम धर्म' देते हैं और धर्म की रसात्मक अनुभूति का नाम भक्ति साथ ही वे यह भी मानते हैं कि धर्म का स्वरूप सामाजिक सम्बन्ध में विकसित

हुआ है उसका परलोक और अध्यात्म से कोई सम्बन्ध नहीं है—वह लोकमंगल का ही धारक है यह लोक मंगल धारक तत्व स्वभाव में उतर आए तो 'भक्ति' है भाव की दृष्टि से वह जिस श्रद्धा और प्रेम का मिश्रित रूप है उसका आलम्बन धारक शक्ति का वह उद्धवरित नराकार रूप है—जो लोक रक्षण-रंजनोपयोगी शक्ति, शील और सौंदर्यमय है इस प्रकार व्यक्त आलम्बन ही आलम्बन है और उसके समग्र रूप से सम्बद्ध भक्ति सर्वांगीण है न तो वह अव्यक्त से सम्बद्ध है और न ही कर्म ज्ञान तथा उपासना के किसी पक्ष से शून्य अव्यक्त विषयक होने से वह रहस्य के पक्षधर विदेशी स्वभाव की हो जाती है और व्यक्त विषयक होने पर भी किसी एक पक्ष से शून्य होकर एकांगी और एकान्तिक इन या ऐसे निष्कर्षों पर पहुँचकर अपनी मान्यता बनाने में वे पुनीत भारतीयवाङ्मय की अभ्युक्ति अथवा उसका आत्मसात् करने वाले कुम्भज कल्प गोस्वामी तुलसीदास के मानस का सहारा लेते हैं स्मरणीय है कि सहारा भर ही लेते हैं— व्याख्या सर्वथा अपनी आधुनिक दृष्टि से देते हैं परंपरागत आचार्यगण भी अपनी स्थापना इसी प्रकार परम्परा प्रतिष्ठ वाङ्मय के साक्ष्य पर करते हैं, पर जहाँ वे जीवन की परिधि को मनोमय कोष से ऊपर ले जाते हैं और अंतिम समय परलोक अथवा आध्यात्म के स्तर पर ले जाते हैं—लोकमंगल को आत्मसातकर लोकातीत तक पहुँच जाते हैं—वहाँ शुक्ल जी युग-सत्य के अनुरोध से—व्यक्त जगत के समष्टि मंगल तक ही मनुष्यता की चरितार्थता की इयत्ता स्थापित करते हैं उनके परमार्थ दर्शन व्यवहार दर्शन और काव्य दर्शन सबका गंतव्य यही लोकमंगल है इसी बिन्दु पर मानव अपने स्वाभाव में निहित मानवता का चरम साक्षात्कार करता है

जैसा कि ऊपर कहा गया है उनकी दृष्टि में व्यवहार जगत् का मंगल या सौंदर्य ही साध्य है यह मांगल्य या सौंदर्य विरुद्धों का सामंजस्य है यह विरोध है—सत् और असत् का—रामत्व और रावणत्व का चूंकि संस्कार सत् असत् का मिश्रण है—अत यह संघर्ष और असामंजस्य भी रह रहकर उभरता रहता है जिसके लिए जगद्धारक शक्ति 'प्रयत्न पूर्वक' साध्य (मंगल) की सिद्धि करती है इसी लक्ष्य की उपलब्धि के लिए व्यवहार दर्शन के रूप में शुक्ल जी 'लोक धर्म' की स्थापना करते हैं धर्म की चर्चा विश्व की सभी समुन्नत संस्कृतियों ने की है—पर शुक्ल जी की दृष्टि में वे धर्म सामान्य धर्म हैं विशेष धर्म नहीं उनकी दृष्टि में विशेष धर्म है सरस्वती तथा दृषद्वती के तटों पर उद्भवित धर्म-अर्थशास्त्र अनुमोदित वर्णाश्रम धर्म इस सोशल डिसिप्लिन में बुद्धि बल, अर्थ तथा सेवा भाव का आधार लिया गया है—जिसके बिना कोई समाज चल नहीं सकता इसमें कर्तव्यानुसार अधिकार की व्यवस्था है जिसको जितना ही बड़ा अधिकार है—उसका उतना ही बड़ा क्लेश-साध्य कर्तव्य और उत्तरदायित्व भी है—इसीलिए तदनुरूप वे श्रद्धा तथा स्नेह भाजन हैं शुक्ल समस्त यह व्यवस्था सनातन

पथिया की भांति जमना नहीं प्रत्युत 'ग्रमणा' है आर्यसमाज का उस समय जोर था, पर शुक्ल जी आर्य समाज सम्मत चतर्वर्णी नहीं हैं उनके लोक मंगलोपयोगी लोक-धर्म में क्रिश्चियनमत की भांति केवल 'करुणा' मात्र का अवलम्ब नहीं है न ही केवल क्रोध का इसीलिए वे टालस्टाय और गांधी का विरोध करते हैं वे वर्णाश्रम वादी समाज का स्वप्न देखते हैं और तदनुरूप लोकधर्म से सत्य के शासन में तत्व को सक्रिय रखकर मानव मात्र का मंगल चाहते हैं–इसीलिए मार्क्स और लेनिन के सबहारावाद के विपक्ष में हैं डा रामविलास जी मानते हैं शुक्ल जी का सर्वाधिक कमजोर पक्ष यह उनका पक्ष यही है वाजपेयी जी उनके लोकधर्म को जमीन बच्चो मानते हैं और हजारीप्रसाद द्विवेदी लोकधर्म की उत्कृष्ट और निकृष्ट रूपों की चर्चा करते हुए उसे भिन्न दृष्टि से रखते हैं उसके उत्कृष्ट रूप की सम्भावना समुन्नत मनस्क व्यक्ति में देखते हैं और शास्त्रानुमोदित लोकधर्म को जड़ता का विरोधी बताते हैं शुक्ल जी का ध्यान धर्म के उस रूप पर है जिससे औसत लोक प्रगति प्रशमता विहीन, असमुन्नत मनस्क सामान्य लोक–शासित होता है तुलसीदास के वर्णाश्रम धर्म की शुक्ल सम्मत यह नयी व्याख्या है जो समाज समुचित बुद्धि, बल, अर्थ और सेवा का आधार लेकर अधिकार–कर्तव्य-निष्ठ श्रद्धेय और श्रद्धालुओं से आपूरित न होगा–वह समाज रचनात्मक न होगा और जो रचनात्मक न होगा, वह गन्तव्य तक नहीं पहुंच सकता–लोकमंगलोपयोगी नहीं हो सकता

शुक्ल जी का गन्तव्य एक ही है–व्यवहार और काव्य उसके दो प्रस्थान हैं–किवा काव्य का काम भी लोकमंगलोपयोगी भावजगत् का निर्माण करना है लोकमंगल, लोकरक्षण, पालन और उन्नत है तत्परक कर्म है और कर्म की ओर प्रवर्तक भाव है फलतः उस भाव जगत का परिष्कार काव्य का साध्य है–प्रयोजन है भावजगत् का परिष्कार, चित्तवृत्ति का परिष्कार, चित्तवृत्ति का दमन नहीं–शोधन उन्हें अभीष्ट है एतदर्थ शुक्ल जी मानते हैं कि काव्य ऐसी वाग्धारा है जो व्यक्ति सत्ता रागात्मक सत्ता को लोकसत्ता में विलीन कर दे व्यक्तिगत भावभूमि को लोक सामान्य भावभूमि तक उठा ले जाय उनकी दृष्टि में यही सात्त्विक मनोदशा रसदशा है पारम्परिक आचार्यों की भांति यह न तो सर्वथा आनंदमयी दशा है और न ही स्वयं में साध्य उनकी दृष्टि में काव्य संविद् विश्रान्ति नहीं कर्तव्यविश्रान्ति है प्रेमचन्द ने भी, कुछ इसी लहजे में कहा था कि अब हम सुलाने वाला साहित्य नहीं जगाने वाला साहित्य चाहिए शुक्ल जी भी श्रद्धा को प्रेम की अपेक्षा इसीलिए उत्कृष्ट मानते हैं कि पहला जागरण है और दूसरा सुषुप्ति वैसे दोनों मिल जाय उनका सामंजस्य हो जाय तो सर्वोत्तम इसीलिए कर्म ज्ञान और उपासना में भक्तिपथप्रयासी, उपासना को वे सर्वोत्तम मानते हैं

शुक्लजी मानते हैं कि काव्य अभिव्यक्ति है—अध्यवित नही-इसीलिए अव्यक्त वासना के रूप में स्थित राग की अपेक्षा उसके व्यक्त रूप प्रेम और 'करुणा' को ज्यादा महत्व देते हैं— वे इन्हे लोक मंगल की दृष्टि से 'बीजभाव' मानते हैं काव्य रसात्मक काव्य है और रस भावाश्रित है—फलत भाव की व्याख्या उन्होने जीवनानुभव, अध्ययन से अर्जित बुद्धि तथा विशेषता मनोविज्ञान के आलोक में की है अपनी मान्यता स्वीकार करने में जसे विकासवाद, भौतिकवाद की निष्पत्तियो की अपनी रुचि के अनुरूप ग्रहण किया है उसी प्रकार मनोविज्ञान भी वे भाव की व्याख्या मे मनोविज्ञान की सहायता लेकर भी उस फ्रायड की भांति स्वप्न के समकक्ष नहीं रखते जिसमे मनुष्य की अनादमित इच्छाओ का अचेत प्रकाशन होता है परम्पराभाव के स्वरूप पर वासनावासित हृदय सहृदय की ओर से विचार करती है जबकि शुक्ल जी विषयबद्ध लौकिक पक्ष की ओर से मनोविज्ञान परिवेश की व्यक्ति मानसगत प्रतिक्रिया पर ही विचार करता है—फलत उनकी दृष्टि म मनोविज्ञान सम्मत भाव का स्वरूप इस प्रकार है—प्रत्यक्षबोध, अनुभूति तथा वेगयुक्त प्रवृत्ति संश्लिष्ट चक्र का नाम भाव है परम्परा प्रभाव या अभिव्यक्ति की दृष्टि से रस की दृष्टि से भाव का विचार करती है जबकि शुक्ल जी उत्पत्ति की दृष्टि से इसीलिए उनकी दृष्टि मे भाव मे वेगयुक्त प्रवृत्ति और निर्दिष्ट आलम्बन का होना आवश्यक है—जबकि परम्परा रसात्मक परिणति को ही दृष्टिगत करती है इस मान्यता के कारण शुक्ल जी रसस्थापना या काव्य चिंतन के सन्दर्भ मे और अनेक कई उद्भावनाएं आ जाती है उदाहरणार्थ परम्परा जहा रस को अतिनयत रस को आनन्दमय मानती हैं, वहा शुक्लजी सुखात्मक के साथ दुखात्मक भी उनकी दृष्टि मे रसात्मक अनुभूति केवल इसलिए कही जाती है कि व्यक्तिगत योग क्षेम की भावना से मुक्त हृदय द्वारा साधारणीकृत रूप मे ग्रहीत होने से अक्षोभकर होती है जहा परम्परा रस की कोई कोटि नही मानती वहा शुक्लजी उत्तम, मध्यम तथा अधमकोटि की स्थितियां भी बताते हैं जहां परम्परा प्रकृति रस को विषय मे मौन हैं वहा शुक्लजी मुखर हैं जहां परम्परा समस्त काव्य सामग्री का साधारणीकरण मानती है वहां शुक्ल जी आलम्बनत्व धर्म के साधारणीकरण की बात करते हैं रसविरुथभाव की परम्परा स्थायी भाव कहती है पर उसे सहृदय साधक कहकर 'सब्जेक्टिव' रहने देती है शुक्ल जी ग्राहक आश्रय तादात्म्य जो सब सबध हैं—के विकास पर स्थायी को परिविस्तुनिष्ठ पद्धति पर करते हैं परम्परा जहा रस को काव्येना रसोदोनलुलोक कहकर रस की लोकगत स्थिति का विरोध करती है वहा शुक्ल जी उसे लोक जीवन में भी प्रतिष्ठित करते हैं और परम्परा से हटकर काव्य का जीवन की सीमा मनामय को शतक ही निर्धारित करते हैं उनकी दृष्टि में काव्य रसात्मक अनुभूति परक वागधारा ही है, मात्र चामत्कारिक उक्ति सूभी है और तथ्यपरक पथ प्रधान जिस अनुभूति का आलम्बन व्यक्त नही है ऐसी अनुभूति कल्पित है और तदयम काव्य काव्याभास

इसीलिए प्रज्ञातप्रिय की आलम्बन बनाकर चलने वाली काव्यधारा से वह उपरत है। काव्य में जैसे अब कृत्रिम होता है, पाश्चात्य काव्य वाली अंग्रेजी भाषा का अभिव्यक्ति के धरातल पर यथानुकरण भी उन्हें अपनी भाषा की प्रकृति से विचलित करने वाला कृत्रिम रूप लगता है।

इस प्रकार एक सच्चे भारतीय समालोचक के रूप में हिन्दी जगत को परमार्थ दर्शन, व्यवहारदर्शन और काव्य दर्शन के क्षेत्र में उनका अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रदेय है।

डी-4 विश्वविद्यालय आवासगृह,
देवासरोड, उज्जैन

रामजी तिवारी

आचार्य शुक्ल का लोकमंगल और उसकी परवर्ती दिशाएं

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, भरतमुनि अभिनव गुप्त और मम्मट आदि की परम्परा के आस्तिक आस्था वाले रसवादी समीक्षक थे किन्तु काव्य में रस की केन्द्रीय सत्ता स्वीकार करते हुए भी उन्होंने काव्यास्वादजनित चरम आनन्दानुभूति को अंतिम लक्ष्य न मानकर उसकी मूल प्रयोजनीयता को जीवन-व्यापी लोक मंगल की उच्च भूमि पर प्रतिष्ठित किया। भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य चिंतन में रमणीयता और आनन्द के प्रति अतिवादी आग्रह को वे काव्य की भ्रांत और खण्डित दृष्टि मानते थे। आनन्दवादी दृष्टि के सम्बन्ध में उनका स्पष्ट मत है कि 'कविता की इसी रमानेवाली शक्ति को देखकर जगन्नाथ पण्डितराज ने रमणीयता का पल्ला पकड़ा और उसे काव्य का साध्य स्थिर किया तथा यूरोपीय समीक्षकों ने आनन्द को चरम लक्ष्य ठहराया! इस प्रकार मार्ग को ही अंतिम गन्तव्य स्थान मान लेने के कारण बड़ा गड़बड़झाला हुआ" इस कथन से स्पष्ट होता है कि शुक्ल जी काव्यानन्द अथवा काव्यास्वाद को किसी महत्तर लक्ष्य का साधन अथवा मार्ग मानते हैं उनके लिए

काव्य एक रमणीय मनुरजन ही नही एक ऐसी शक्ति भी है जिसमे भावात्मक सत्ता के प्रसार के साथ मानव मात्र को कम म प्रवृत्त करा की विलक्षण शक्ति होती है उनके अनुसार "कविता केवल वस्तुआ क रूप रग म सौ दय की छटा नही दिखाती प्रत्युत कम और मनोवृत्ति के सौन्दय के भी अत्यत मार्मिक दृश्य सामन रखती है" कविता म मनोविकारा का परिष्कार करके बाह्य प्रकृति के साथ मनुष्य की अन्त प्रकृति का सामजस्य घटित करने और जगत के साथ रागात्मक सम्बधो को विस्तृत करने की क्षमता होती है इसीलिए शुक्ल जी काव्यानुशीलन स उपलब्ध हृदय की मुक्तावस्था रा भाव योग कहते हैं और उसे ज्ञानयोग और कमयोग का समकक्ष मानते है उनका स्पष्ट कथन है कि "हृदय की इसी मुक्ति साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहत हैं इस साधना को हम भाव योग कहते है और कमयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते है"

आचाय शुक्ल न हृदय की मुक्तावस्था को ही रसदशा माना है यह मुक्तावस्था आध्यात्मिक मोक्ष अथवा आत्मसाक्षात्कार की समाधि से भिन्न -व्यक्ति के हृदय का व्यक्तिगत योग-क्षेम की सकुचित भावना से ऊपर उठकर लोकव्यापी प्रसार है स्वाथमुक्त अनुभव से युक्त मनुष्यता की उच्चभूमि है, भावयोग की सबसे उच्च कक्षा है यह अनुभूति लौकिक जीवन की सम विषम यथाथ परिस्थितिया म व्याप्त लोक पीडा और लोक मगल के साक्षात्कार से प्राप्त होती है इसलिए शुक्लजी के अनुसार सच्चे काव्य मे मनुष्य मात्र की रागात्मिका वृत्ति का सामजस्य और उनके भावो का आलम्बन निहित होता है साहित्य वस्तुत 'जनता की चित्तवृत्ति का सचित प्रतिबिम्ब होता है' वे मानते है कि "सच्चे कवि के लिए अनेक विशेषताओ और विचित्रताओ के बीच मनुष्य जाति के सामान्य हृदय की पहचान आवश्यक है" जागतिक जीवन की व्यापक और व्यावहारिक प्रयोजनीयता के आग्रह के कारण वे 'अध्यात्म' शब्द को काव्य या कला के क्षेत्र मे अनावश्यक मानते हैं और उसके स्थान पर मनुष्य की अन्त प्रकृति की सात्विक विभूति को प्रतिष्ठित करते हैं

काव्य मे लोक मगल के विधायक गुणों पर अधिक बल देने के कारण आचाय शुक्ल ने भोगपरक सिद्धावस्था के सौन्दय की अपेक्षा प्रयत्नपरक साधनावस्था के कम सौन्दय को श्रेष्ठतर माना है और इस कम सौन्दय मे प्राप्त होने वाली मगलदशा की अनुभूति को कैवल्य की दशा से भी अधिक काम्य माना है वे मानते हैं कि लोकव्यापी मगल और अमगल के बीच सामजस्य ही लोक धम का सौन्दय है जिसका अधिष्ठान प्रयत्न की आद्योपात प्रक्रिया है लोक मगल की विधायिनी वृत्ति ही अभ्युदय धर्मी धमवृत्ति होती है उसी मे मगल शक्ति का अपूव सचय और ज्ञान कम तथा उपासना का समाहार होता है कवि इसी मगल शक्ति से अन्त प्रकृति को प्रभावित करता है

हृदय पर पडने वाले काव्य प्रभाव से कम प्रेरणा के साथ ही शील स्थापन भी होता है उनकी मान्यता है कि काव्य मे लोक मगल की साधना का प्रवतक भाव कोई एकान्तिक वृत्ति न होकर ज्ञान, इच्छा, प्रवृत्ति और लक्षण से युक्त एक वृत्ति चक्र है इसलिए भावोद्बोधक विभावो म भी औचित्य और लोकपक्षीयता अनिवाय है

आचाय शुक्ल का मत है कि "मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है, उसका अपनी सत्ता का ज्ञानतक लोकबद्ध होता है लोक के भीतर ही कविता क्या किसी कला का प्रयोजन और विकास होता है" उनकी इस मा यता मे समसामयिक सामाजिक यथाथ की सापेक्षता और पारिवेशिक स दम मे कला की प्रयोजनीयता के समथन का स्पष्ट सकेत मिलता है अपनी इसी दृष्टि के कारण उन्होने काव्य सम्बधी कलावादी, अभि यजनावादी, आनन्द वादी रहस्यवादी दृष्टियो का स्पष्ट विरोध किया उन्होने दीप्ति, माधुय और कोमलता के मानारूपो के प्रवर्तक भाव प्रेम की अपेक्षा लोकरक्षा के प्रति सकल्पित, लोक साध्यस्वरूपा, लोक मगल विधायिनी करुणा को काव्य का श्रेष्ठतर बीजभाव माना है ।

रसवाद के प्रति निष्ठावान होने के बावजूद आचाय शुक्ल ने उसकी प्रासगिकता और वतमान सम्भावनाओ पर वज्ञानिक दृष्टि से विचार किया है उनका स्पष्ट कथन है कि "हमे अपनी रस निरूपण-पद्धति का आधुनिक मनोविज्ञान की सहायता से खूब प्रसार सस्कार करना पडेगा ,इस पद्धति की नीव बहुत दूर तक डाली गई है पर उसके ढाचे का नए नए अनुभवो के अनुसार अनक दिशा म फलाव बहुत जरूरी है" इसी दृष्टि स उन्होने मनोविज्ञान और मानवशास्त्र के आलोक मे रस के स्वरूप और रसबोध की विभिन्न स्थितियो को आधुनिक सन्दभ म विवेचित किया इस सन्दभ म उनका सर्वाधिक महत्वपूण प्रदेय यह रहा कि उ होने काव्यास्वाद को लोकोत्तर आन द की अतीन्द्रिय भूमि स उतारकर लोक की सुख दु खात्मक यथाथ भूमि पर प्रतिष्ठित किया मनोमय कोश को काव्य की प्रकृत भूमि निश्चित करके काव्य को समाज और लोक जीवन से जोडकर युग सापक्ष मानव विकास के साधन के रूप म प्रतिष्ठित किया भट्ट-नायक की भाति वे मानते हैं कि आलम्बन की मूल विशेषताओ का श्रोता या पाठक के साथ साधारणीकरण हो जाना रस की उत्तम दशा है । पूण साधारणीकरण क अभाव मे भी उत्पन्न भावानुभूति को भी वे मध्यम कोटि की रसदशा के रूप मे स्वीकार करते ह वे रसानुभूति को प्रत्यक्ष अथवा वास्तविक अनुभूति का एक उदात्त अवदात्त रूप मानते हैं व्यक्ति हृदय का लोक हृदय मे लीन हो जाना अपनी पृथक सत्ता का परिहार हो जाना ही रस दशा है अर्थात् सत्तोद्रेक के प्रभाव से अनुभूति की विशुद्धता और निर्वैयक्तिकता की स्थिति मे हृदय के प्रभावित होने का नाम रसदशा है उनके अनुसार श्रेष्ठ काव्य के रसास्वाद से मनुष्य मात्र की एकता की अनुभूति, मनुष्य की

प्रवृत्ति और निवृत्ति की सजगता, भावों की औचित्यपूर्ण व्यवस्था, शील की निर्मिति और लोकमगल की सिद्धि होती है

आचार्य शुक्ल की लोक सम्बधी अवधारणा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' पर आधारित थी वे वस्तुगत दृष्टि से जगत को देखते थे उनके अनुसार 'सत् और असत् भले और बुरे के मेल का नाम ससार है' लोक की सीमाहीन व्याप्ति के अनुसार ही उनका लोक-धम भी अत्यन्त व्यापक है उसम भी 'सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सतु निरामया' का अन्त र्भाव है मानव मात्र के दुख मोचन और सुखस्थापन ही लोक धम का सवस्व है वे समाज निरपेक्ष निष्क्रिय वैयक्तिक साधना की अपेक्षा बहुजन हिताय और बहुजन सुखाय वाली सक्रिय मगल साधना को अधिक महत्व देते हैं इसीलिए वे स्वीकार करते हैं कि "यदि किसी अत्याचारी का दमन सीधे न्यायसगत उपायों से नहीं हो सकता तो कुटिल नीति का अवलम्बन लोक धम की दृष्टि से उचित है" लोकधम के मान शास्त्रानुमोदित न होकर जनता की प्रवृत्तियो के आधार पर निर्धारित होते हैं काव्य इसी लोक धम के आश्रय से भाव-विस्तार द्वारा व्यक्ति हृदय को विश्वहृदय में विलीनकर मर्ममय आनन्द की सृष्टि करता है, मनुष्य के उदात्त गुणो और वृत्तियों के विकास से लोक मगल का विधान करता है लोक मगल जीवन सौन्दय का दूसरा नाम है जीवन के चरम मगल मे धम और सुख दोनो की पराकाष्ठा है वे लोक मगल की साधना को जगत की साधना या तप मानते हैं अर्थात् लोकधम ही वह एकमात्र साधन है जिससे लोक मगल के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है यही कारण है कि जीवनव्यापी सन्दर्भों को समाविष्ट करके मानव हृदय म मगल विधायिनी सत्व ज्योति को जगाने वाले प्रबन्ध काव्यो को उन्होंने काव्य का श्रेष्ठरूप ठहराया लोकधम की कसौटी पर गोस्वामी तुलसीदास को हिन्दी का सवश्रेष्ठ कवि सिद्ध किया उनके इतिहास म भी यही दृष्टि सवत्र उदग्र है

आचाय शुक्ल की लोक और लोक धम सम्बधी अवधारणा के सबध मे अनेक बार प्रश्न उठाए गए हैं इस सम्बध में यह निवेदन आवश्यक है कि उनकी ये अवधारणाएँ किसी समाजशास्त्रीय अथवा शास्त्रानुमोदित धार्मिक दृष्टि पर आधारित नहीं है उनका निर्माण आनुवशिक सात्विकता सांस्कृतिक निष्ठा, सदाचार मूलक आभिजात्य, गभीर अध्ययन, तत्कालीन सुधारवादी नवजागरण और राष्ट्रीय चेतना के समन्वय से हुआ उनमे भावात्मक आदशवाद का एक स्तर निरन्तर बना रहा यही कारण है कि उन्होने लोक सचालन के लिए वर्ण व्यवस्था का समथन किया और रूस की क्रान्ति की निन्दा की ज्ञातव्य है कि उनके समय तक साहित्य म वग सघष की स्थितियाँ स्पष्ट हो गई थी जीवन की जटिलताओं से जूझने और निगतिगामी प्रतिरोधक शक्तियों से टकराने के प्रस्ताव हो चुके थे बहुत से साहित्यकार सक्रिय रूप से राजनीति मे भाग ले रहे थे

किंतु शुक्लजी के लोक मंगल दर्शन में समकालीन मानव नियति के नग्न यथार्थ की अपेक्षा उदात्त आदर्श ही अधिक प्रतिष्ठित रहा फिर भी इतना तो निर्विवाद है कि आचार्य शुक्ल ने लोक मंगल को काव्य का चरम लक्ष्य मानकर उसे जीवन और जगत के समीप खड़ा कर दिया लोक मंगल को केन्द्र में रखकर काव्य चिन्तन का एक ठोस आधार दिया उनकी लोकमंगल पर्यवसायी काव्य की व्यवहारधर्मिता का सिद्धांत परवर्ती काव्य चिंतन में भी उपादेय बना रहा

छायावादी काव्य चिंतकों ने काव्य में आत्मानुभूति, भावात्मकता, अन्तर्मुखता व्यक्ति स्वातन्त्र्य, नूतन जीवन बोध राष्ट्रीयता, कल्पना और स्वच्छन्दात्मकता जैसी विशेषताओं पर विशेष बल दिया मनोवैज्ञानिक निष्पत्तियां और दार्शनिक मान्यताओं का भी खुलकर उपयोग किया गया किन्तु मानव जीवन के उन्नायक एवं मंगल विधायक तत्वों में उनकी आस्था निरन्तर बनी रही दृष्टिकोण अवश्य सूक्ष्म और दार्शनिक हो गया काव्य को आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति मानने वाले प्रसादजी ने स्थापित किया कि 'काव्य के रसास्वाद में लोक मंगल की कल्पना प्रच्छन्न रूप से अन्तर्निहित है निराला जी का मत है कि आत्माभिव्यक्ति में कवि के व्यक्तित्व के व्याप्ति के कारण समष्टि का आदर्श प्रतिफलित होता है महादेवी वर्मा के लिए "कविता विश्वमात्र के प्रति स्नेह की स्वीकृति है" 'पन्त जी रचनाकार से आग्रह करते हैं कि 'युग सघर्ष के भीतर जो नवीन मानवता जन्म ले रही है, वर्तमान के कोलाहल से बधिर, पेट से आच्छादित मानव-हृदय के मंच पर जिन विश्व निर्माण, विश्व एकीकरण की नवीन सांस्कृतिक शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा अन्तर्क्रीडा हो रही है उन्हें अपनी वाणी द्वारा अभिव्यक्ति दे इन उदाहरणों में लोक मानवता और लोक मंगल के सूक्ष्म संकेत स्पष्ट हैं किन्तु उनकी दिशा मानव चेतना की नूतन संस्कृति के आलोक में रेखांकित की गई है डॉ नगेन्द्र ने मनोवैज्ञानिक निकायों के आधार पर काव्य के भौतिक आधार की प्रतिष्ठा की है उन्होंने बुद्धि और हृदय की टकराहट से पैदा होने वाले अभिज्ञान रस की नूतन उद्भावना भी की है उन्होंने काव्यास्वाद को एक प्रकार का समंजित आस्वाद माना है जिसमें ऐन्द्रिक, रागात्मक और बौद्धिक तत्वों का लवण-नीर संयोग रहता है आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने भारतीय साहित्य को राष्ट्रीय संस्कृति की उपज माना है और राष्ट्र की विकासोन्मुख गतिविधियों के चित्रण का बार बार आग्रह किया है अपनी पुस्तक "राष्ट्रीय साहित्य तथा अन्य निबन्ध' में उन्होंने काव्य द्वारा राष्ट्रीय स्वरूप के निर्माण और विकास पर विशेष बल दिया है वे काव्य को एक ऐसा भावात्मक प्रतिमान मानते हैं जो समाज को गति और दिशा देने के साथ ही विकासशील मानव जीवन के महत्वपूर्ण एवं मार्मिक प्रश्नों को अभिव्यक्त करता है वे काव्य को ऐसा सौन्दर्यमय चित्रण मानते हैं जो मनुष्यमात्र में स्वभावतः अनुरूप भावोच्छ्वास और सौन्दर्य संवेदन उत्पन्न करता है उनके अनुसार सौन्दर्य संवेदन ही रस है इन स्वच्छन्दतावादी काव्य चिन्तकों

और शुक्लजी मे मूलभूत भेद यह है कि छायावादी काव्य मे आनन्द प्रमुख लक्ष्य और उपयोगितावाद के उपकारक माना गया है उनके अनुसार कविता सीधा प्रभाव न डालकर सूक्ष्मतर संवेदना मे लोक मंगल करती है, हृदय संवाद के द्वारा आत्म विकास होता है छायावादियो ने शुक्लजी के नैतिक मूल्यो की अपेक्षा सौन्दर्य मूल्य और आनन्द मूल्य पर अधिक बल दिया छायावाद म प्रयोजनीयता की अपेक्षा अनुभूति की गहनता पर बल दिया गया

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी आचार्य शुक्ल की भांति ही लोक मंगल को काव्य का प्रमुख तत्व माना है उनके अनुसार साहित्य की रचना भी इस अन्य भले कामो के समान मनुष्य को सुखी बनाने के लिए की जाती है उनकी स्पष्ट उक्ति हैं– म साहित्य को मनुष्य की दृष्टि से देखने का पक्षपाती हू जो वाग्जाल मनुष्य को दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षिता से बचा न सके, जो उसकी आत्मा को तेजोदीप्त न बना सके, जो उसके हृदय को पर दु ख कातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहने म मुझे सकोच होता है आचाय द्विवेदी के समस्त साहित्य चिन्तन मे लोक व मनुष्य के प्रति मंगल कामना का ही स्वर मुखर है कि तु आचाय शुक्ल के लोकमंगल में जहा नैतिकता का प्राधा य है वहां द्विवेदीजी म मानवतावाद का ! आचाय द्विवेदीजी के इतिहास म भी उनकी इस दृष्टि को सरलता स देखा जा सकता है

प्रगतिवादी साहित्य चिन्तन म सामाजिक आर्थिक और राजनतिक आधारो पर यथाथ जीवन में प्रगतिशील जीवन मूल्यो की प्रतिष्ठा का आग्रह किया जाता है अचल जी के शब्दो मे "साहित्य मानव समाज की स्वाधीनता के लिए किया गया विचारात्मक और कलात्मक उद्योग है' डॉ रामविलास शर्मा साहित्य को सामाजिक विकास के साथ विकसित होने वाली सामाजिक क्रिया मानते हैं डॉ रांगेय राघव ने समाचारपत्रो के भावात्मक विवरणो तक म कविता की सम्भावना देखी है मार्क्सवादी दशन के आलोक म वग सघष को प्रोत्साहित करने पर अधिक बल दिया गया है मानव चेतना पर पड़ने वाले भौतिक प्रभावो की यथाथ अभिव्यक्ति के साथ कविता से यह अपेक्षा भी की जाती है कि वह जीवन सघष की क्षमता प्रदान करे डा रामविलास शर्मा, मुक्तिबोध, डॉ नामवर सिंह, शिवदानसिंह चौहान, रांगेयराघव, प्रकाशचन्द्र गुप्त, अमृतराय, अचल प्रभृति प्रगतिवादी समीक्षको ने कविता म भौतिक आधारो और सामाजिक मूल्यो का आग्रह किया है मुक्तिबोध ने काव्य को साधनहीन लोगो के लिए अपने भौतिक-अविक अस्तित्व, अपने परिवार क अस्तित्व की रक्षा का साधन माना है वे काव्यगत सामाजिक और सास्कृतिक मूल्यो को समाज या वग की देन मानते हैं वे कवि प्रतिभा और कल्पना को निर्विकल्प न मानकर नानात्मक संवेदन और संवेदनात्मक ज्ञान की स्थिति का समथन करत हैं मानवी अभिप्राय और मानव सत्ता का विकास

साहित्य का मूलतत्व मानने के कारण उन्होंने आचार्य वाजपेयी को छायावाद के प्रतिक्रियावादी मूल्यों का प्रतिष्ठापक माना मार्क्सवादी होकर भी मुक्तिबोध की दृष्टि व्यापक थी उन्होंने काव्य मे अनुभूति, संवेदना अथवा भाव की दृष्टि को भी स्वीकार किया है किन्तु कविता की सार्थकता को जीवन वाहन की लालटेन बनने मे ही मानते है

इस प्रकार प्रगतिवादी काव्यचिंतन मे कविता का उद्देश्य क्रांति चेतना के द्वारा सर्वहारा वर्ग को उद्बुद्ध करना और उसका पथ प्रशस्त करना हो गया यहाँ पर लोक मंगल का स्वरूप समता पर आधारित शोषण मुक्त समाज की रचना के उद्देश्य पर आधारित है भाव प्रसार कर्म प्रेरणा, प्रयोजनीयता जैसी कुछ मूलभूत बातो की आचार्य शुक्ल के सिद्धान्त के साथ संगति होने पर भी प्रगतिवादी दृष्टि भिन्न है यद्यपि डॉ रामविलास शर्मा ने एक स्थान पर स्थापित किया है कि आचार्य शुक्ल कुछ कम प्रगतिवादी नही थे किन्तु यह स्पष्ट है कि शुक्ल जी के लोक मंगल मे वर्गीय भावना की स्वीकृति नही है सात्विक हिंसा को लोकधर्म का अंग मानने पर भी किसी भी साधन से उसे प्राप्त करना उन्हे स्वीकार न था शुक्ल जी की लोक कल्पना सर्वहारा वर्ग तक सीमित न होकर व्यापक थी मुक्तिबोध' के काव्य विषयक निबन्धो मे भी आचार्य शुक्ल की सुख दुखात्मक स्थिति की सवित विश्रांति का समर्थन नही मिलता, उनमे जीवन संघर्ष का स्वर ही अधिक उदग्र है

प्रयोगवाद मे व्यक्ति चेतना की प्रधानता और कलात्मक आग्रह की प्रधानता के कारण लोक भावना का स्वर गौण है नकेन वादियो ने कविता को जटिल संवेदनाओ की अभिव्यक्ति मानकर रसात्मक स्थलो की खोज और मनुष्य की समझदारी बढाना उसका मूल उद्देश्य माना अज्ञेय जी का मत है कि व्यक्ति सत्य के साधारणीकरण से सांस्कृतिक स्तर पर मानवीय चेतना का नूतन संस्कार होता है उन्होंने भी अपनी एक कविता मे कहा है कि 'भावनाए तभी फलती हैं कि उनमे लोक के कल्याण का अंकुर कही फूटे" वे कवि के निर्विशेष होने को ही लोक से जुडना मानते हैं वे अन्यत्र कहते हैं कि आत्मदान की प्रेरणा देने वाले भाव कल्याणमय संप्रेषण सेतु है और ऐसे भाव सौंदर्य के साथ जुडना मानवता का एक अमूल्य गुण है किन्तु इस चिंतन धारा मे आचार्य शुक्ल की लोक मंगल भावना का कोई प्रत्यक्ष स्वरूप नही दिखाई पडता

नई कविता मे व्यक्ति और समाज तथा भाव और प्रभाव के समन्वय का आग्रह प्रमुख हुआ इसमे लोकमंगल की संभावना व्यक्ति और समाज के स्वस्थ सम्बन्ध मे देखी गई और दिव्य मानव अथवा दलित मानव के स्थान पर लघुमानव अथवा सहजमानव की प्रतिष्ठा की गई अनुभूति की सघनता के स्थान पर अनुभूति की

प्रामाणिकता का प्रश्न उठाया गया। बौद्धिक आग्रह और व्यापक मानवीय दृष्टि के तर्कों पर रसानुभूति के स्थान पर सह-अनुभूति को उत्कृष्टतर काव्य निकष माना गया। डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार "नई कविता भी ऐसी ही विधा में विश्वास रखती है जो प्रज्ञा को विचलित किए बिना, विवेक की जाग्रत अवस्था में भावक को यथार्थ अनुभूति के तलतक पहुंचा देने की क्षमता रखती है" इस कथन में प्रामाणिकता, सत्यनिष्ठा, सम्प्रेषणीयता और सहभाव का आग्रह स्पष्ट है। डॉ. जगदीश गुप्त के अतिरिक्त नेमीचन्द्र जैन, भारती, लक्ष्मीकान्त वर्मा, विजय देवनारायणसाही, डॉ. रघुवंश जैसे काव्य चिंतकों ने भी वैज्ञानिक आविष्कारों और विनाशकारी प्रवृत्तियों के आलोक में सहज मनुष्य की नियति को सुधारने का ध्येय रखा है। उनकी अवधारणा प्रगतिवाद की वर्गीय चेतना से भिन्न आचार्य शुक्ल की मान्यताओं का परिवर्तित स्वरूप है किन्तु इनमें मुख्य अन्तर यह है कि इनमें साधारणीकरण और रसानुभूति की संभावनाओं को नकार कर बौद्धिक स्तर पर आत्मोपलब्धि और भाव प्रसार की बात पर बल दिया गया है।

साठोत्तरी काव्य में विद्रोह और आक्रोश का स्वर अधिक मुखर हुआ है। इस अवधि के विभिन्न काव्यान्दोलनों में काव्य के सौंदर्य मूल्यों को अस्वीकार करके जीवन के नग्न यथार्थ को रूपायित करना काव्य का लक्ष्य माना गया है। साठोत्तरी कविता अपनी प्रकृति में पारिवेशिक दबावों में बेचैन मनीषा की आकुल अभिव्यक्ति है। इसमें प्रगतिवाद की वर्गीय चेतना का आग्रह है किन्तु व्यक्ति स्वातन्त्र्य का भी समर्थन है। दलित और शोषित वर्ग की समस्या के समाधान के लिए किसी भी प्रकार के संघर्ष की इसमें स्वीकृति है। साठोत्तरी काव्य की जनवादी चेतना कलात्मक मूल्यों की अपेक्षा काव्य की प्रभाविष्णुता पर बल देती है। इस जनवादी चेतना में लोक मंगल का अर्थ है वर्गीय संघर्ष के माध्यम से लोक मुक्ति। लोक अर्थात् समाज का दलित-शोषित और उपेक्षित वर्ग। यहाँ पर आचार्य शुक्ल का व्यापक 'लोक मंगल' एक विशिष्ट वर्ग में सीमित हो गया है। साथ ही उनकी आचार मूलक मर्यादाओं का भी अतिक्रमण कर दिया गया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य शुक्ल की लोक मंगलवादी ध्येय धर्मिता परवर्ती काव्य चिंतन में अनेक रूपों में विकसित होती रही है। अनेक दृष्टि भेदों के होते हुए भी जीवन और जगत के साथ काव्य की प्रयोजनीयता की दृष्टि समस्त चिंतन-धाराओं में एक संयोजक सूत्र की भांति वर्तमान रही है।

हिन्दी विभाग
पूना विश्वविद्यालय, पुणे

परिचर्चा

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल अपने लेखन-काल से लेकर अब तक चर्चा के केन्द्र रहे हैं। गंभीर अध्ययन-मनन और स्वस्थ जीवन दर्शन के परिणामस्वरूप उन्होंने जो दिशा हिन्दी समीक्षा को दी है वह आज लुप्त प्राय है। आज इतना बिखराव है कि उसे एक जगह समेटना कठिन है। मत मतांतरों की दुनिया में व्यक्ति विवेकप्रधान होता, यह विवेकशीलता ही उसे नये-नये क्षितिज खोजने को विवश करती है। किन्तु हिन्दी समीक्षा के क्षेत्र में ऐसा नहीं हो रहा— यह खेद का विषय ही है। शुक्ल जी ने अपनी लोक दृष्टि के कारण साहित्य का इतिहास लिखने के साथ साम्राज्यी शक्तियों का विरोध किया, स्वाधीनता की मांग को प्रखरता दी और रामराज्य की शोषण-हीन समाज व्यवस्था के प्रतिपादक के रूप में गोस्वामी तुलसीदास जैसे 'लोक मंगलकारी' कवि दिये। शुक्लजी ने साहित्य के साथ अपने युग को भी नवीन दिशा दी है। उन्हें हिन्दी का पहला इतिहासकार, गंभीर निबंधकार और आलोचक होने का गौरव प्राप्त है।

आ शुक्ल जी के बाद आ हजारी प्रसाद द्विवेदी, आ नन्द दुलारे वाजपेयी, डा नगेंद्र एव डा राम विलास शर्मा आदि विद्वान आलोचकों ने शुक्ल जी की परम्परा को आगे बढाया किंतु डा नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक 'दूसरी परम्परा की खोज' (1982) के माध्यम से शुक्ल जी की स्वस्थ परम्परा के सामने प्रश्नचिह्न लगा दिया है यद्यपि यह प्रश्नचिह्न गुरुऋण से उऋण होने के लिये है, तथापि कुछ घटना तो हुआ ही है– चाहे अनजाने ही क्यो न हो यह अजीब सी बात है कि डा नामवर सिंह जस मार्क्सवादी समीक्षक 'परम्परा की दूसरी खोज' के लिये व्यक्तियो का आधार बनाते हैं वे लिखते हैं–' शुक्ल जी के लोकधर्म के प्रतीक तुलसीदास हैं, द्विवेदी जी के कबीर भक्ति के स्तर पर बहुत कुछ समान, व्यवहार के स्तर पर एकदम विरुद्ध था स्वय तुलसी कबीर का बिना नाम लिये स्पष्ट विरोध करते हैं और शुक्ल जी की इसमे सहमति है द्विवेदी जी इस बात मे तुलसीदास से भी असहमत हैं और शुक्लजी से भी क्या यह विरोध भी परम्परा मे शामिल है ? (दूसरी परम्परा की खोज पृ 19 ०) गोकि तुलसीदास जी और शुक्लजी ने मिलकर कबीर के विरुद्ध षड्यंत्र किया हो और कबीर ने नामवरजी की अदालत मे मुकदमा दायर किया हो– यह फसला कुछ ऐसा ही लगता है नामवर जी की इस बात को मान भी लें तो स्वय द्विवेदी जी ने अपने व्यक्तित्व से तुलसी के संघर्षों की छवि देखी है इसलिये तुलसी उन्हे भी प्रिय हैं तुलसी प्रेम व्यक्तिगत समानता और संघर्षों के आधार पर है तो कबीर प्रेम सामाजिक अक्खडपन के कारण फिर शुक्ल जी के प्रिय तुलसीदास हैं तो परम्परा विरोध कहां ? द्विवदी जी ने कबीर जिस पथवाद का विरोध करते रहे, नामवरजी उसी की स्थापना मे पुस्तक लिखकर बेकार का श्रम करते हैं

आ शुक्ल जी की इतिहास दृष्टि पर भी कुछ आलोचकों ने प्रश्न चिन्ह लगाये हैं और विदेशी आलोचकों के प्रभाव को लेकर तो कुछ युवा आलोचक फतवे बाजी मे लग गये हैं अत हमने इस परिचर्चा के माध्यम से शुक्ल जी की इतिहास दृष्टि, उनकी परम्परा, विदेशी प्रभाव एव वर्तमान समीक्षा मे छायी धुध को लेकर परिचर्चा आयोजित की है ताकि इस धुध को हटाकर शुक्लजी के महत्व को अंकित किया जा सके

प्रश्नावली

1– शुक्ल जी की इतिहास सम्बन्धी प्रमुख अवधारणाये क्या है क्या व आज भी प्रासगिक हैं ?

2– कुछ आलोचकों के विचार से शुक्लजी पश्चिमी आलोचकों से बहुत प्रभावित हैं इस सदर्भ मे लोग मथ्यू आर्नोल्ड का नाम लेते हैं इस सम्बन्ध मे आपके क्या विचार हैं

3– 20वी शताब्दी में हिन्दी गद्य म लोग यह कह रहे हैं कि जो योगदान उपन्यास कहानी मे प्रेमचन्द ने, काव्य मे निराला ने दिया, शुक्ल जी का आलोचना के क्षेत्र मे वही योगदान है इस सम्बन्ध मे आपकी क्या राय है ?

4- शुक्ल जी के बाद हिन्दी आलोचना की गति और स्थिति पर क्या आपको सतोष है

5– आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और डा रामविलास शर्मा आदि ने शुक्ल जी की परम्परा को आगे बढ़ाया है अथवा एक समानातर परम्परा का विकास किया है इस वाद विवाद म आपके क्या विचार है ?

6– शुक्ल जी न आलोचना कम को बहुत गभीर रूप म अपनाया लेकिन आज अधिकाश लोग आलोचक कम पुस्तक समीक्षक अधिक है आलोचना के गहरे अध्ययन शील कम और चिंतन-मनन मे उनका सम्बध कम रह गया है इस गभीर सकट के बारे मे आपके विचार और समाधान क्या हैं ?

1
नवलकिशोर

1 शुक्ल जी ने साहित्य के इतिहास को जनजीवन की पृष्ठभूमि म समझा परखा है वे बुनियादी तौर पर हमारे सास्कृतिक पुनर्जागरण की उदारतावादी जीवनदृष्टि से प्रेरित हैं शुक्ल जी के दृष्टि क्षितिज को विस्तार दिया आगे चलकर द्विवेदीजी (हजारी) ने–उससे आदिकाल और भक्तिकाल को और गहराई से समझने की दृष्टि विकसित हुई आधुनिक काल के साहित्य के बारे म वैज्ञानिक और प्रगतिशील इतिहास दृष्टि दी है डा रामविलास शर्मा ने फिर भी प्रगतिशील दृष्टि से हिन्दी साहित्य के इतिहास का पुनर्लेखन अपेक्षित है

2 शुक्ल जी अगर परम्परावादी होते तो अवश्य पश्चिमी आलोचकों स प्रभावित नही होते सास्कृतिक विकास के हमारे उस नये दौर मे शुक्ल जी ने उन्ही आलोचको से विशेष प्रभाव ग्रहण किया जो हमारी राष्ट्रीय अपेक्षाओ के सदभ मे सगत थ इसीलिए व आनल्ड से प्रभावित थे और कलावादियो के विरोध म थे उस प्रभाव को लकर कट्टर परम्परावादी ही आपत्ति कर सकता है वतमान मे हमारा सास्कृतिक विकास पश्चिम के ससग से प्राप्त नयी चुनौतियो के प्रति अनुक्रियाओ का परिणाम है शुक्ल जी ज्ञान के नये आलोक मे अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को नये सिरे से पहचानते हैं और एक सुसगत साहित्य-दृष्टि का निर्माण करते हैं अत पश्चिमी प्रभाव आदि की बात ही इस प्रसग मे बेतुकी है

3 आलोचना के क्षेत्र मे शुक्ल जी का योगदान उन्हे युग प्रवर्तक ठहरा देता है—इसमे भी सन्देह की गुंजाइश है क्या ?

4 शुक्ल जी के बाद की हिन्दी आलोचना पर असंतोष होना ही चाहिए रस को जिस तरह प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया गया, उससे परम्परावादी और शुद्ध क वादी रुझानो को बल मिला इसका एक इतर दुष्परिणाम अध्यापकीय आलोचन रूप मे सामने आया मनोवैज्ञानिक आलोचना से अवश्य मानसिक अनुराग मिला प्र शील आलोचना काफी जद्दोजहद के साथ ही प्रतिष्ठित हो सकी और आज आलोचना का स्वरूप विभिन्न प्रगतिशील अवधारणाओ के टकराव से ही ब है व बन रहा है

5 द्विवेदी जी को शुक्ल जी से अलग एक परम्परा के प्रवर्तक के रूप मे र करना मुझे संगत नही लगता है बुनियादी तौर पर द्विवेदी जी भी उस सांस्कृ पुनर्जागरण चेतना की उपज हैं जो उदारतावाद से तब तक बढ़कर मानवतावादी गयी है द्विवेदीजी का शुक्ल जी की इतिहास दृष्टि के संशोधक और प्रसारक के रूप म लिया जाना चाहिए रामविलासजी का आलोचक के रूप मे सर्वाधिक उल्लेखनीय क है शुक्ल जी को अपनी गरिमा म प्रतिष्ठित करना लेकिन शुक्ल जी के प्रति अप सारी श्रद्धा के साथ भी वे जिस आलोचना दृष्टि का प्रतिपादन करते हैं वह एक भि दृष्टि है रामविलास जी से ही प्रगतिशील इतिहास आलोचना दृष्टि प्रतिष्ठित होती

6 प्रश्न मे यह ध्वनि है कि पुस्तक समीक्षा आलोचना एक का गौण अंग है तरह की धारणा का ही परिणाम है कि आज पुस्तक समीक्षा अधकचरे अखबारी समी के हाथ मे चली गई है गभीर और अध्ययनशील आलोचको के लिए न केवल अखब मे जगह है, अपितु साहित्यिक पत्रिकाओ म भी (पुस्तक समीक्षा के मात्र एक प्रासगिक होने के नाते) उन्हे अधिक अवसर नही हैं पुस्तक समीक्षा के साथ जो आलोचना न जुडती उसके हमेशा ही सजीव त और अल्पायित होने का खतरा रहता है हिन्दी व्यावसायिक पत्रो मे अच्छा साहित्य मिलना कम से कम होता जा रहा है, इसलिए व आलोचना एकदम गस्थानीय और अवाछनीय होती गयी है गैर-व्यावसायिक साहित्यि पत्रिकाओं द्वारा आलोचना की जरूरत के प्रति अधिक चिन्ताशील होने के अला फिलहाल और कोई समाधान नजर नही आता आज उनम भी जो आलोचना अधि स्थान पा रही है, वह ऐसे लेखको की है जिन्हे साहित्यिक सवालो से अधिक चिन्त दलीय मसलो को हल करने की है ऐसे लेखको के कम अध्ययनशील होने का खतर हमेशा होता ही है लेकिन इन सबके बावजूद आज भी कुछ गभीर, अध्ययनशील औ

निष्ठावान आलोचक सक्रिय हैं और एक ऐसा युवावर्ग भी उभर रहा है इसलिए आज की आलोचना की हालात को लेकर मैं निराशावादी नहीं हू

हिन्दी विभाग,
सुखाडिया विश्वविद्यालय, उदयपुर

2

मैनेजर पाण्डेय

1 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' के आरभ मे आ शुक्ल ने साहित्य के इतिहास के बारे मे अपना दृष्टिकोण स्पष्ट कर दिया है उन्होने लिखा है– 'जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहा कि जनता की चित्तवृत्ति का प्रतिबिम्ब होता है तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति के परिवर्तन के साथ साथ साहित्य के स्वरूप मे भी परिवर्तन होता चला जाता है आदि से अत तक इन्ही चित्तवृत्तियो की परम्परा को परखते हुए साहित्य की परम्परा के साथ उनका सामजस्य दिखाना ही 'साहित्य का इतिहास कहलाता है"

साहित्य की विकास प्रक्रिया परम्परा और परिवर्तन के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध के रूप मे आगे बढती है साहित्य का इतिहासकार परम्परा और परिवर्तन के सम्बन्ध की व्याख्या करता है और परिवर्तन के कारणो तथा परिणामो की खोज भी करता है साहित्य का इतिहास समाज के इतिहास के भीतर ही गतिशील होता है, इसलिये समाज के विकास से साहित्य के विकास के सम्बन्ध की पहचान के बिना सार्थक इतिहास लेखन कठिन है आ शुक्ल अपने इतिहास मे न केवल साहित्य की सामाजिक सत्ता (आधार और भूमिका) की खोज करते है, बल्कि हिन्दी साहित्य के विकास को हिन्दी भाषी जनता की चित्तवृत्ति के विकास से जोडकर देखते हैं इस तरह उनकी दृष्टि जनवादी है जनवादी दृष्टिकोण के कारण ही वे रीतिवाद का विरोध करते हैं और बुजुआ कलावाद तथा व्यक्तिवाद का भी

आचार्य शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास–लेखन का एक जनोन्मुख दृष्टिकोण विकसित किया और एक व्यवस्थित पक्का ढाचा प्रदान किया उन्होने इतिहास लिखकर इतिहास बनाया, अपने इतिहास–लेखन के माध्यम से रीतिवाद से सघर्ष किया और हिन्दी साहित्य के स्वतत्र विकास का माग बनाया आज के इतिहासकार के नयी चुनौतिया हैं आज की चुनौतियो का सामना करने के लिये तैयार इतिहास

कार आ शुक्ल के इतिहास–लेखन की दृष्टि पद्धति और दिशा से बहुत कुछ सीख सकता है

2 आचार्य शुक्ल पश्चिमी साहित्य और साहित्यशास्त्र की परम्परा से खूब परिचित थे उन्होंने साहित्य के अतिरिक्त विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शन और इतिहास सम्बन्धी नये पुराने यूरोपीय चिंतन का गहरा अध्ययन किया था वे हिन्दी आलोचना को आधुनिक बनाकर उसे समकालीन पश्चिमी आलोचना के समकक्ष लाना चाहते थे उन्होंने अपने स्वतंत्र और मौलिक चिंतन के बल पर यह काम पूरा किया इसी प्रक्रिया में वे यूरोप के कई नये-पुराने आलोचकों से टकराये उनमें से जिनको अपनी मान्यताओं के अनुकूल पाया उनका अपने समर्थन में उल्लेख किया और जो प्रतिकूल लगे उनका जोरदार विरोध किया लेकिन यूरोप के किसी आलोचक के विचारों को अपने साहित्य चिंतन का आधार नहीं बनाया उन्होंने अपनी मान्यताओं के समर्थन में आई ए रिचर्ड्स का उल्लेख किया और क्रोचे का जमकर विरोध किया रिचर्ड्स के उल्लेख मात्र से कुछ लोग शुक्लजी पर उसका प्रभाव देखने की खोज में लग गये डा नगेन्द्र ने दोनों की तुलना करते हुए एक लेख ही लिख दिया क्रोचे के विरोध के कारण अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद के समर्थक शुक्लजी के पीछे लाठी लेकर पड़ गये यह स्वाभाविक ही था कि रीतिवाद और कलावाद के समर्थक शुक्लजी का विरोध करते आज भी यह विरोध कम नहीं हुआ है

जहां तक डा शुक्ल के चिंतन पर मैथ्यू आर्नोल्ड के प्रभाव की बात है तो यह एक अफवाह के अलावा और कुछ नहीं है आ शुक्ल के सम्पूर्ण लेखन में शायद ही कहीं मैथ्यू आर्नोल्ड का विशेष उल्लेख मिले बहुत पहले राची रानी गुर्टू ने एक लेख लिखा था 'रामचन्द्र शुक्ल और मैथ्यू आर्नोल्ड' उन्होंने जिन बातों के आधार पर इन दोनों में समानता देखी थी, उनके आधार पर मैथ्यू आर्नोल्ड ही नहीं किसी भी नये पुराने महत्वपूर्ण आलोचक से शुक्लजी की समानता दिखाई जा सकती है

3 वास्तव में यह स्थापना डा रामविलास शर्मा की है, जो उनकी पुस्तक 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना' की भूमिका में इस तरह मौजूद है हिंदी साहित्य में शुक्लजी का वही महत्व है जो उपन्यासकार प्रेमचंद या कवि निराला का उन्होंने आलोचना के माध्यम से उसी सामन्ती संस्कृति का विरोध किया, जिसका उपन्यास और कविता के माध्यम से प्रेमचन्द और निराला ने' डा रामविलास शर्मा की इस मान्यता को जो व्यापक स्वीकृति मिली है, वह उचित ही है प्रेमचन्द और निराला कि तरह आ शुक्ल के चिंतन और लेखन की मुख्य दिशा सामन्तवाद–विरोधी और साम्राज्यवाद विरोधी है

इन तीनो लेखको के महत्व पर विचार करते समय यह देखना चाहिए कि निराला के सामने हिन्दी कविता की जसी समृद्ध परम्परा थी, वैसी न तो कथा-साहित्य की प्रेमचद के सामने थी और न आलोचना की आ शुक्लजीके सामने निराला के सामने परम्परा को विकसित करने, सवारने और नयी परम्परा बनाने की चुनौती थी लेकिन जैसे प्रेमचद के सामने हिन्दी कथा साहित्य की यथार्थवादी परम्परा के निर्माण की चुनौती थी वैसे ही आ शुक्ल के हिन्दी की वस्तुवादी आलोचना के शास्त्र और व्यवहार के निर्माण और विकास की निराला की तरह प्रेमचद और आ शुक्ल ने अपने-अपने क्षेत्र की चुनौतियो का सफलतापूर्वक सामना किया प्रभाव की दृष्टि से ये तीनों ही आधुनिक हिन्दी साहित्य के मार्गदर्शक आलोक स्तम्भ है,

4 आ शुक्ल के बाद की हिन्दी आलोचना की गति और स्थिति पर विचार करने पर लगता है कि हिन्दी आलोचना के विभिन्न क्षेत्रो का जितना विस्तार हुआ है उतना विकास नही आ शुक्ल मुख्यत कविता के समालोचक थे उनके सामने मुख्य चुनौती रीतिकाल और उसके सामती दृष्टिकोण, कलावाद एव काव्यशास्त्र की विकृतियो की थी इसलिए शुक्ल जी रीतिकाव्य के विरोध के साथ साथ भक्तिकाव्य को नवीनता के साथ लाये उसकी व्याख्या की उन्हे लोकमगलकारी बताया, साथ ही एक नवीन काव्य-शास्त्र का विकास किया जो रीतिकालीन काव्यशास्त्र से अलग था उन्होने रीतिकाल का विरोध मात्र विरोध करने के लिए ही नही किया, वरन् स्वस्थ विकल्प भी प्रस्तुत किया यदि ऐसा न होता तो रीतिवादी काव्यशास्त्र की शरण मे जाना पडता या आलोचना 'मनमाने की बात' हो जाती

आचार्य शुक्ल के बाद जो मुख्य आलोचक आये वे प्राय शुक्ल जी का विरोध करते हुए आगे बढे आ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने शुक्ल जी की भक्ति आदोलन और भक्तिकाव्य सम्बन्धी कुछ मान्यताओ का खण्डन किया श्री नन्द दुलारे वाजपेयी ने शुक्ल जी के छायावाद के मूल्याकन को चुनौती दी और डॉ नगेन्द्र ने शुक्ल जी के रीतिकाल और रीतिवादी काव्यशास्त्र के विरोध का विरोध किया द्विवेदी जी और वाजपयी जी ने शुक्लजी का विरोध करते हुए भी हिन्दी आलोचना का विकास किया द्विवेदीजी ने कबीर का नया मूल्याकन किया और वाजपेयीजी ने छायावाद के मूल्याकन के अनुकूल आलोचनात्मक वातावरण बनाया बाद के दिनो मे नन्द दुलारे वाजपेयी ने प्रयोगवाद और नयी-कविता की रूपवादी प्रवृत्ति का विरोध करते हुए आ शुक्ल की चिंतन परम्परा को आगे बढ़ाया

आ शुक्ल के लिए आलोचना केवल शब्दार्थ मीमासा न थी वे रचनाओ और रचना-प्रवृत्तियो की व्याख्या करते हुए अपने समय के सामाजिक सवालो की चिन्ता

लिए गम्भीर तयारी की थी उन्होने दर्शन, विज्ञान, मनोविज्ञान और इतिहास के माध्यम से एक हजार साल के साहित्य का गम्भीर मूल्यांकन किया था जायसी, सूर एव तुलसी के काव्य के कलात्मक सौन्दर्य का गम्भीर विश्लेषण और मूल्यांकन करते हुए कविता की आलोचना की जो परम्परा निर्मित की उसका विकास निराला की साहित्य साधना' मे दिखाई देता है

आ शुक्ल को साहित्य और समाज मे आलोचना के दूरगामी प्रभावो की चिंता थी, जबकि अधिकाशत तात्कालिकता का बोलबाला है कुछ अपवादो को छोड दें तो आज की आलोचना मे आ शुक्ल की तरह गम्भीर विश्लेषण और मूल्यांकन का प्रयास कम दिखाई देता है, प्राय चौंकाने वाले बयानो और फतवो की भरमार है समकालीन राजनीति की तरह आज हिन्दी आलोचना भी सर्वग्रामी अवसरवाद का शिकार है इस अवसरवाद के विरुद्ध संघर्ष के बिना आ शुक्ल की विरासत की रक्षा और उसका विकास सभव नही है

हिन्दी विभाग, जवाहरलाल नेहरू
विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

–

3
चचल चौहान

1 किसी भी रचनाकार की इतिहास सबधी अवधारणायें उसके युग की सामाजिक चेतना से निर्मित होती हैं हालांकि इन अवधारणाओ को अर्जित करने और उन्हें अमलीरूप देने म व्यक्ति विशेष की भूमिका होती है आ शुक्ल की इतिहास सम्बधी अवधारणायें हमारे स्वाधीनता सग्राम की जरूरतो के मुताबिक बन रही थी चूंकि इस सग्राम के नेतृत्व मे उभरते पूजीपतिवर्ग की यह भूमिका थी, उसे देश के तमाम लोगो को एकता और सामजस्य के सूत्र म बाधना था इसलिये राष्ट्रवाद और स्वदेशी की चेतना का व्यापक प्रचार-प्रसार उसकी अपनी जरूरत थी आ शुक्ल की इतिहास सम्बधी अवधारणायें मूल रूप से इसी जरूरत का साहित्यिक प्रतिफलन थी उनके विचारो म राष्ट्रवाद और स्वदेशी की मजबूत जडें थी, मगर राष्ट्रीय नवजागरण के साथ ही जो पुनरुत्थानवाद आया था उसमे सामती विचारो के सडे गले पक्ष भी समाहित हो गये थे वे विचार हमारे यहा के पूजीवादी नेतृत्व मे भी थे चाहे वे तिलक रहे हो या गाधी रामचन्द्र शुक्ल मे भी सामती अवशेषो जैसे वर्ण व्यवस्था के भीतर ही लोकसत्तात्मक (डेमोक्रेटिक) व्यवस्था का स्वप्न या धर्म की वकालत आदि को जगह प्राप्त थी उनम

उस तरह से सामंतविरोधी चेतना नहीं पायी जाती जैसी पश्चिम के पूंजीवादी चिंतकों में थी हाँ इतना अवश्य है कि उनकी चेतना में साम्राज्यवाद का डटकर विरोध है इनकी इतिहास सम्बंधी अवधारणाओं में भी हम यह संगति लगातार पाते हैं

2 जहाँ तक प्रभावों का सवाल है शुक्लजी ने खुद लिखा था कि "भारतवर्ष का सम्पर्क संसार के और भागों से बढ़ रहा है यदि हममें विवेकवल रहेगा तो हम चारों ओर से उपयोगी और पोषक सामग्री लेकर और पचाकर अपने साहित्य को पुष्ट और दृढ़ करेंगे और यदि यह विवेकबल न रहेगा तो जैसे अनेक प्रकार के विदेशी रोगों ने आकर यहाँ अड्डा जमा लिया है, वैसे ही अनेक प्रकार की व्याधियाँ आकर हमारे साहित्य को ग्रस लेंगी और उसका स्वतन्त्र विकास रुक जायगा "मथ्यू आर्नोल्ड" और शुक्लजी में यही समानता है कि दोनों ही साहित्य को जीवन और जगत से जोड़कर देखते थे मगर दोनों में ही विचार अपने अपने युग और समाज की जरूरतों के मुताबिक वजूद में आये थे असल बात यह नहीं कि शुक्लजी पर किन किन विदेशी आलोचकों का प्रभाव है असल सवाल यह है कि ऐसे कौन से दबाव थे जिनके कारण वे अनेक विचार सरणियों में से कुछ को लेकर और पचाकर अपनी आलोचना पद्धति विकसित कर रहे थे और कुछ डटकर धुनाई कर रहे थे भारत की मुक्ति के लिए जो विचार महत्वकारी भूमिका निभा रहे थे, शुक्लजी उन विचारों को अपनाने के पक्ष में थे, ध्यान रहे कि 'कला कला के लिए' या 'रहस्यवाद' या 'छायावाद' का विरोध और डारविन, हेगेल और रिचर्ड्स आदि का समर्थन या फिर भौतिकवाद का समर्थन और अध्यात्मवाद का विरोध वे इसी नजरिये से कर रहे थे हालांकि इस समर्थन और विरोध में अनेक जगह गड्डमड्ड है जिसे बहुत बारीकी से देखने पर जाँचा जा सकता है

3 सचाई यह है कि जिस सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति प्रेमचन्द और निराला तथा अन्य छायावादी कवि और रचनाकार कर रहे थे आलोचक के माध्यम से वही चेतना शुक्लजी की समीक्षा में अभिव्यक्त हो रही थी जब हमारे समाज का यह एहसास हुआ कि 'स्वतन्त्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' तो साम्राज्यवाद का विरोध और राष्ट्रवाद का विकास हमारे समाज की चेतना का हिस्सा बनने लगा बहुत ही बारीक रूप में आजादी की यह चेतना काव्य में आकाशचारी बिम्बों जैसे सूर्य चन्द्र, तारे बादल चिड़िया, हवा और बंधनमुक्त प्रकृति के उपादान जैसे फूल, पर्वत, नदी आदि और स्वतन्त्रता के प्रतीक 'शिशु' के रूप में व्यक्त हुई देश की महानता का प्रतीक "हिमगिरि" जिस पर पंत, प्रसाद, निराला और महादेवी सभी ने कविताएँ लिखी देश के नवजागरण और आजादी की उत्कृष्ट अभिलाषा का ही द्योतक था उपन्यास कहानी में यह चेतना अपने यथार्थ रूप में सामने आयी जिसे प्रेमचन्द ने अपनी वाणी देकर सजाया और

सवारा आलोचना के क्षेत्र मे "जीवन और जगत" पर बल देकर यथार्थवाद को प्रतिमान के रूप म आ शुक्ल ने स्थापित किया यह प्रतिमान भी उसी सामाजिक चेतना का प्रतिफल था निश्चय ही शुक्लजी का यह योगदान महत्वपूर्ण ह

4 जिस तरह समाज एक ही बिन्दु पर नही ठहरा रहता, उसी तरह विचार भी एक ही जगह ठहरे नही रहते आज के ज्ञान-विज्ञान के युग म तो उनमें जल्दी-जल्दी तब्दीलियाँ भी होती हैं हिन्दी आलोचना भी शुक्लजी के जमाने की आलोचना मे काफी आग बढ़ आयी ह कमियाँ शुक्लजी की आलोचना मे भी थी और उनके बाद की आलोचना मे रही आयी मगर उनका विकास भी हुआ साहित्य को जीवन और जगत से जोडकर देखने परखने के तरीके को शुक्लजी के बाद मार्क्सवादी आलोचकों ने विकसित किया और उनकी कई कमजोरियो को हजारीप्रसाद द्विवेदी जसे मानवतावादी प्रगतिशील आलोचको ने भी दूर किया फिर भी यह तो कहा ही जा सकता है कि हिन्दी आलोचना के विकास की जो स्थिति है उस पर हो सतोष कर लेने से उसकी गति अवरुद्ध हो जायेगी जबकि पुरानी पद्धतिया काफी दोषपूर्ण रही हैं चाह वे रामविलास शर्मा की पद्धति हो या नव्य समीक्षा के वकीलो की

5 शुक्लजी की परम्परा का अथ जिन्ह मालूम नही या फिर जो जानबूझ कर उसे विकृत कर रह ह वे ही दूसरी परम्परा की खोज कर रहे हैं इनके लिय परम्परा का अथ व्यक्ति तक ही सीमित होता है आचाय शुक्ल की परम्परा का अथ मेरे तईं, साम्राज्यवाद विरोधी और राष्ट्रवादी विचार परम्परा से है इस परम्परा को आगे बढाने का मतलब इसके अच्छे पहलुओ को आत्मसात करके और गलत हिस्सो की आलोचना करके आगे बढाना है इस प्रक्रिया को आचाय द्विवेदी और रामविलास शर्मा ने आगे बढाया है ये सभी आलोचक साम्राज्यवाद के विरोध मे खड़े रहे और शुक्लजी के आलोचना कम मे आयी कमजोरियो का दूर करने की कोशिश करते रहे यह अलग बात है कि स्वय उनम भी कई कमजोरियाँ आ गइ जिनकी स्वस्थ आलोचना होनी चाहिये जिससे कि यह परम्परा और अधिक पुष्ट हो सके इस स्वस्थ आलोचना की शुरुआत मुक्तिबोध कर चुके थे और आज भी इस दिशा मे आग बढने की कशमकश चल रही है

6 दरअसल आलोचना कम विचारधारात्मक सघष का एक हिस्सा है शुक्लजी इस कम को इसीलिये गभीरता स ले रहे थे वे अपने समाज और जाति की गरिमा को सिद्ध करने और विदेशी साम्राज्यवादियो के प्रति अपने लोगो मे नफरत पदा करने तथा अपने जन के भीतर भौतिक जीवन के बार मे रुचि पदा करने के मिले जुले उद्देश्य से आलोचना को ऊचा स्तर देने के लिये कृतसकल्प हुए थे हम किसी से कम नहीं, यह

भावना उन्हें विश्व के तमाम ज्ञानविज्ञान का चिन्तन मनन करने के लिये बाध्य कर रही थी 'विश्व प्रपंच' की भूमिका इस लालसा की जिन्दा सबूत है जिसमें उन्होंने बहुत ही विस्तार से इस ज्ञानविज्ञान का जायजा लिया है अज्ञान से मुक्ति के बिना और वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार के बिना कोई देश या उसके लोग आजादी हासिल नहीं कर सकते शुक्लजी को भी यह बात मालूम थी इसलिये उन्होंने अपने आलोचना कर्म को अपने युग की जरूरतों के मुताबिक अधिक से अधिक ज्ञान अर्जित करके धारदार बनाया

आपके प्रश्न में जो निराशावाद झलक रहा है मैं उससे सहमत नहीं हूं आज का आलोचक भी रचनाकर्म को गंभीरता से लेता है और सम्पूर्णता में देखें (किसी व्यक्ति विशेष पर ध्यान केन्द्रित न करें) तो मौजूदा दौर की आलोचना में अध्ययनशीलता और चिन्तन मनन की परम्परा का नितांत अभाव नहीं पायेंगे हाँ, यह जरूर है कि जो कुछ हो रहा है, उससे और बेहतर की गुंजाइश तो हमेशा ही बनी रहेगी अगर ऐसा न हो तो विकास की गति ही रुक जायेगी

हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

4
हरदयाल

1– शुक्लजी का 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' अपने आप में तो एक महत्वपूर्ण रचना है ही, साथ ही उसका महत्व इस दृष्टि से भी है कि हिन्दी साहित्येतिहास लेखन का मूलाधार यही बना है इसका कारण शुक्लजी की साहित्येतिहास—दृष्टि की स्पष्टता और निश्चितता तथा उस दृष्टि से विशाल साहित्य राशि को विश्लेषित और मूल्यांकित कर सकने की क्षमता है इतिहास सम्बंधी उनकी प्रमुख धारणायें थीं— (क) साहित्य देशविशेष की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है (ख) जनता की चित्तवृत्ति मुख्यतः राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के द्वारा निर्मित होती है (ग) इन परिस्थितियों में परिवर्तन आने पर जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन आता है और चित्तवृत्ति में परिवर्तन के साथ साहित्य में परिवर्तन आता है (घ) इसलिये साहित्येतिहास में काल विभाग साहित्य की प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर होना चाहिये, प्रवृत्ति की प्रमुखता का निर्णय किसी विशेष प्रवृत्ति के ग्रन्थों की संख्या के अधिकता और प्रसिद्धि के आधार पर होता है

शुक्लजी की साहित्येतिहास सम्बधी ये अवधारणायें आज भी प्रासगिक हैं इसका प्रमाण शुक्लजी के बाद लिखे गये हिन्दी साहित्य के इतिहास—यहाँ तक कि नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा सोलह भागो मे प्रकाशित "हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास भी है

2 शुक्ल जी ने अपनी आलोचना दृष्टि और आलोचना पद्धति का विकास विविध स्रोतो से प्रभाव ग्रहण करके किया इन प्रभावो मे पश्चिम का प्रभाव भी था उनकी अपनी प्रवृत्ति और जीवन दृष्टि के अनुरूप मथ्यू आर्नोल्ड और आई ए रिचड्‌स जसे पश्चिमी आलोचक थे अत इन आलोचको का शुक्ल जी पर प्रभाव स्पष्ट है शुक्ल जी ने इनके सकारात्मक आलोचना मूल्यो को आत्मसात किया है

3 इसमें कोई सदेह नहीं शुक्ल जी का आलोचना मे वही योगदान है जो कथा साहित्य मे प्रेमच द का कविता मे निराला की स्थिति शुक्ल जी और प्रेमचन्द की अपने अपने क्षेत्रो म स्थिति मे समान है—इससे म सहमत नही हू

4 मैं शुक्ल जी के बाद की हिन्दी आलोचना की गति और स्थिति से सतुष्ट हू शुक्ल जी के बाद हिन्दी आलोचना ने बहुत प्रगति की है उसने साहित्य के विश्लेषण और मूल्याकन की नयी प्रविधिया और नये मानदण्ड विकसित किये हैं

5 शुक्ल जी के बाद के हिन्दी के प्रमुख आलोचको ने अपना रास्ता अलग बनाने का प्रयत्न किया और इसम एक सीमा तक उन्हे सफलता भी मिली है आचाय द्विवेदी ने अपनी अलग आलोचना दृष्टि और इतिहास दृष्टि विकसित की और आलोचना और इतिहास दोनो मे मौलिक योगदान किया, कि तु उनकी परम्परा नही चली उनके शिष्य डा नामवर सिंह उनकी अपेक्षा आचाय शुक्ल के अधिक निकट हैं, चाहे वे इस स्वीकार न करें डा रामविलास शर्मा और (प्राय सभी प्रगतिवादी आलोचक) शुक्ल जी की परम्परा के ही आलोचक हैं उनकी अपनी निजी उपलब्धिया अवश्य हैं

6 आज भी आलोचना कम को गम्भीरता से लेने वाले आलोचक विद्यमान हैं यद्यपि उनकी सख्या बहुत कम है यह कोई अनहोनी बात नहीं है गम्भीर आलोचको की सख्या हमेशा कम रही है, आज भी कम है, आगे भी कम रहेगी पुस्तक समीक्षा भी गम्भीर आलोचना हो सकती है, इसके प्रमाण स्वदेश और विदेश दोनों जगह सुलभ हैं किन्तु आज के अधिकांश सम्पादक और समीक्षक पुस्तक समीक्षा को गम्भीरतापूवक नही लेते हैं फलत पुस्तक समीक्षा का अवमूल्यन हो गया है लेकिन यह कोई सकट नही

है। अगम्भीर और दायित्वहीन समीक्षाओं का समय बहुत तेजी से रहा म बदल रहा है किन्तु गम्भीर और दायित्वपूर्ण पुस्तक समीक्षायें उभर कर सामने आ रहा है और समीक्षा के नये प्रतिमान गढ़ रहा है

हिन्दी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

5

जीवन सिंह

1 शुक्लजी हिन्दी साहित्य के पहले इतिहासकार हैं जिनकी इतिहास दृष्टि के आधार सुचिन्तित और अनुभव की कसौटी पर प्रमाणित एक व्यवस्था है जो न तो अतीत को सबका स्वीकार करती है और न ही सबका तिरस्कार उनके वर्तमान अनुभवों और मान्यताओं के लिए इतिहास का एक अध्याय बन जाता है तो दूसरा अध्याय इतिहास की ज्ञात एवं ज्ञापित अभिव्यक्तियों में गौण रहने का बचने का वे जहां एक ओर आदिकालीन साहित्य में नहीं जीवन और मध्य साहित्य का उदाहरण मात्र रत हैं वहीं दूसरी ओर रीतिकाल के सामन्ती परिवेश तक सीमित साहित्य और संस्कृति के समस्त बड़े प्रामाणिक और तथ्यगत प्रस्तुतीकरण समान हुए रीतिवादी प्रवृत्तियों का भी खुल विरोध करते हैं उनकी इतिहास दृष्टि के निर्माण में भारतीय पुनर्जागरण की चेतना बहुत सक्रिय है इसी का परिणाम है कि वे अपनी परम्पराओं का सही मूल्यांकन कर पाते हैं तथा भविष्य और वर्तमान के विकास की सम्भावनाओं का सही पता दे पाते हैं

शुक्लजी के लिए इतिहास शुद्ध घटनाओं चरित्रों का बेतरतीब या सम्बन्ध विहीन संकलन मात्र नहीं है उसके निर्माण में जहां एक ओर मनुष्य और उसके एक वर्ग के स्वार्थ सम्बन्ध हैं वहीं दूसरे वर्ग की संघर्षधर्मी सजगता है इसलिये साहित्य के इतिहास को वे सही परिप्रेक्ष्य प्रदान करने की सुचिन्तित भूमिका निबाहते हैं आ० शुक्ल की इतिहास सम्बन्धी अवधारणा के निर्माण में एक ओर उनके समकालीन जीवनानुभव हैं, दूसरी ओर विश्व और भारत की समृद्ध मानवतावादी ज्ञान परम्परा है तीसरी ओर हमारी अपनी और संसार की साहित्य-परम्परा है इन्हीं सबके बीच से उनकी बहुत सजग, संतुलित और वास्तविकता तक पहुंचनेवाली स्वतन्त्र एवं गम्भीर दृष्टि ने अपना रास्ता बनाया है जिससे वे साहित्य को केवल मनोरंजन और चमत्कार की रचना से अलग "हृदय को प्रकृत दशा

म लाने वाला", उसे "मनुष्यत्व की उच्चभूमि" पर ले जाने वाला मानते है इतिहास क प्रति इतनी यथाथ ग्रौर सम्पूण दृष्टि का ही परिणाम है कि उनकी सौ दय-दृष्टि जीवन के वैभवज य प्रदशन, ग्रहकार ग्रौर चमत्कार तक सीमित नही रहती वह प्रेमचद ग्रौर निराला की तरह किसानो के फूस के झोपडा तक पहु चती है

2 शुक्लजी केवल पश्चिमी ग्रालोचको से ही प्रभावित नही थे बल्कि ससार की समृद्ध ज्ञ न परम्परा को ग्रात्मसात कर उसे समकालीन जीवनानुभवो की वास्तविकता के बीच प्रमाणित या निरस्त कर "हृदय की मुक्त दशा" तक पहुचने वाले इतिहासकार ग्रालोचक थे इस प्रक्रिया मे निश्चय ही ग्रानल्ड की उन स्थापनाग्रो ने उन्हे जरूर प्रभावित किया होगा, जो कि साहित्य के प्रयोजन मे व्यक्तिवाद, कलावाद ग्रौर रीतिवाद का विरोध कर साहित्य ग्रौर जीवन के ग्रत सम्ब ध को प्रमाणित करती है लेकिन साहित्य ग्रौर जीवन के ग्रत सम्ब धो की जो परिधि ग्रानल्ड ने निर्धारित की थी, शुक्ल जी ने ग्रपनी स्थापनाग्रो मे उसका ग्रतिक्रमण किया है ग्राचाय शुक्ल कविता मे नीति के समथक थे कि तु उनकी नीति का स्वरूप ग्रानल्ड से ग्रधिक व्यापक ग्रौर मुक्ति का पक्षधर था नीति को कविता का मूलाधार मानने के कारण ग्रानल्ड, शैले कॉलरज, बायरन ग्रादि कवियो को उनकी सम्पूण ग्रातरिकता मे नही समझ पाते, जबकि शुक्लजी ने सूर के मुक्त समाज की स्वच्छ दतावादी दृष्टि की शले से तुलना करते हुये नीतिपरक रूढिबद्धता से मुक्त दृष्टि की प्रशसा की है बहरहाल, शुक्ल जी परम्परा की स्वस्थ प्रवृत्तियो स प्रभावित हैं, साथ ही वे उनका विकास भी करते हैं इस दृष्टि से वे मथ्यू ग्रानल्ड स ग्रागे बढे हुये, विकास की दिशाग्रो को जानने समझने वाले ग्रालोचक है

3 मैं इस बात से सहमत हू शुक्लजी से शब्द लेकर कहू तो एक समय के ग्रपनी ग्रपनी विधाग्रो के ये "सच्चे साहित्यकार" है उन झूठे साहित्यकारो से इनकी दूसरी परम्परा है जो साहित्य को एक व्यक्ति की "प्रतिभा' मात्र का बदी मानते है शुक्लजी के ये शब्द हमेशा ग्रपना ग्रथ देंगे कि "मनुष्य लोकबद्ध प्राणी है उसकी ग्रपनी सत्ता का ज्ञान तक लोकबद्ध है लोक के भीतर ही कविता या किसी कला का प्रयोजन ग्रौर विकास होता है ' प्रेमचद ग्रौर निराला के साहित्य म इस सिद्धात का समथ प्रायोगिक स्वरूप निर्मित हुग्रा है जो रचनाकार की ग्रत सूत्रता ग्रौर एकता का बहुत बडा साक्ष्य है

4 इस तरह की प्रकृति वाले प्रश्न का दो टूक उत्तर नही दिया जा सकता सतोष है भी ग्रौर नही भी दोनो ही स्थापनाग्रो के प्रमाण हैं शुक्ल जी की मृत्यु के लगभग पांच छ साल बाद हमारी जनता को राजनीतिक ग्राजादी प्राप्त होनी है ग्रौर जा नया

राजनीतिक आधार बनता है उसमे यद्यपि "स्वतन्त्रता" का एक
आता है किन्तु पारम्परिक सामाजिक आधार की रूढिबद्ध विषम
राजनीतिक आधार द्वारा समर्थित पूजीवादी आर्थिक सम्बन्धा स सर
रचना के स्तर पर उन शक्तियो को बल एव समर्थन प्राप्त होता है जो
की लोकबद्ध और मगलविधायिनी दृष्टि की विरोधी व्यक्तिबद्ध और
दृष्टि को स्थापित करने का उद्योग करती हैं कुछ समय के लिये ऐसे
कविता के प्रतिमान' लेकर मैदान मे कूद पडते हैं और लघुमानव के
कविता पर बहस करने लगते है ये लोग "स्वतन्त्रता" का मूल्य क रूप
करते हैं किन्तु "स्वतन्त्रता" के आधार 'समानता" की चर्चा तक नही
से कविता के नय प्रतिमान निकलते हैं यह तो रहा असतोष का पक्ष स
है कि साहित्य संस्कृति म कुछ समय के लिये उछलकूद और धमाचौकडी
इस नवरीतिवाद स सघष कर सच्चे साहित्य की परम्परा को जीवित
शुक्ल प्रेमचन्द की परम्परा का अवसान नही होता वह इतिहासकार
रूप मे हजारी प्रसाद द्विवेदी म जीवित है, वह शुक्ल जी के बाद के स
के रूप मे मुक्तिबोध और डा रामविलास शर्मा मे मौजूद है इनके आलो
और प्रयासा ने आचाय शुक्ल की आलोचना दृष्टि को विकसित किया है जि
है कि आज हिन्दी आलोचना की हा नहीं वरन् साहित्य की सम्पूर्ण धार
रामचद्र शुक्ल की साहित्य दृष्टि का विकास कर हिन्दी साहित्य की मूलधा

5 द्विवदी जी और डा शर्मा जी ने शुक्ल जी की परम्परा का
है न कि किसी "दूसरी परम्परा की खोज" की है हा इतना अवश्य है
शुक्ल की दृष्टि की सीमायें रही हैं, कुछ कमजोरिया रही हैं उनकी
पहचानते हुय लोकबद्धता को द्विवेदी जी और डा शर्मा न अधिक व्यापक
वैज्ञानिक आधार स पुष्ट कर विकसित किया है परम्परा इन सभी
आलोचक भी है कहना न होगा कि द्विवदी जी शुक्ल परम्परा की सीमाओ
करते हुए इसके स्वस्थ पक्ष का विकास करते हैं जबकि नन्द दुलारे
विश्वनाथ प्रसाद मिश्र शुक्ल जी की आलोचना दृष्टि की वास्तविकता तक
पाते किसी के मान लेने से कोई किसी की परम्परा का नहीं हो जाता
की कक्षा म सभी तरह के विद्यार्थी होते हैं लेकिन जरूरी नही कि वे शि
से अपने शिक्षक की परम्परा वाले मान लिये जाय

6 आज के सभी आलोचक तो ऐसे नहीं हैं पर बड़े
परम्परा तथा विभिन्न दृष्टियो वाले समाज म सभी तन्द के लो
जीवन को ही गभीर रूप म अपनाने वाले अधिक नहीं हैं तो

म वहां से मिलेंगे रचना की प्रवृत्ति जीवन से अलग तो नहीं है हम देखें कि हमारे तथाकथित शिक्षित वर्ग मे जीवन को कितने गभीर रूप म अपनाने की आकाक्षा है जिस अनुपात म हमारे यहा जीवन कर्म को गभीरता से अपनाने वाले मनुष्य हैं इस अनुपात मे आलोचना कर्म को गभीरता से अपनाने वाले भी हैं और उनकी सख्या मे नित्यप्रति वृद्धि हो रही है रही पुस्तक समीक्षा होने की बात, यदि वह पूरी तैयारी और सुसगत प्रयोजनबद्धता तथा समकालीन लोकबद्ध अनुभवो की सगति मे लिखी जाये तो वह भी आलोचना ही कही जायेगी जसे सपूर्ण आलोचना छिछली हो सकती है वसे ही पुस्तक समीक्षा भी और जैसे पुस्तक समीक्षा छिछली हो सकती है वसे ही आलोचना भी

—राजकीय महाविद्यालय, गगापुर सिटी

6

कु वरपालसिंह

1 आचाय शुक्ल का विचार था कि 'किसी कवि या लेखक को समग्र रूप से जानो देखो और परखो, टुकडो मे नही जीवन और जगत म जब तक गहरी रुचि नहीं होगी तब तक मूल्यांकन की कसौटी पर यथार्थवादी धार नहीं रखी जा सकती' इसी यथार्थवादी धार के कारण अपने इतिहास मे उ होने उन पक्षो का उद्घाटन किया है जो लोकोपयोगी हैं वे सौन्दय, शील और शक्ति को इसी लोक की वस्तु मानते हैं वे ऐसा काव्य चाहते हैं जो लोगो को प्रेरणा दे अन्याय, अत्याचार और पशुबल का विरोध करे, उसके स्थान पर एक सहज मानवीय समाज की स्थापना का आदश प्रस्तुत करे तुलसी इसीलिए उ ह सबसे अधिक प्रिय हैं उनके तुलसी प्रेम को कुछ लोग साम्प्रदायिक एव पुनरुत्थानवादी-दृष्टि कहते हैं लेकिन यह सकीर्ण और अएतिहासिक जीवन दृष्टि है शुक्लजी का वास्तविक मूल्याकन भारतीय नव जागरण एव राष्ट्रीय मुक्ति आदोलन के परिप्रेक्ष्य म ही हो सकता है प्रेमचद की ही भाति उनके साहित्य का उद्देश्य भी राष्ट्रीय जागरण और साम्राज्यवाद से मुक्ति है यह मुक्ति केवल राजनीतिक और आर्थिक ही नहीं, बल्कि सामाजिक और सास्कृतिक भी है शुक्ल जी ने साम्प्रदायिकता अधविश्वास और मृत परम्पराओ की जगह जगह खिल्ली उडाई है उन्होने योरोपीय-आयातित विचारो पर जो लोकहित म नहीं हैं व्यग्य किये हैं इसके साथ ही वे योरोप के ज्ञान विज्ञान और जीवन जगत के रहस्यो को उद्घाटित करने वाले विचारो का स्वागत करते हैं जो विचार ज्ञान, विज्ञान तथा स्वदेशी से भली भाति सामजस्य स्थापित करने म समथ हो सके, वही श्रेष्ठ और ग्राह्य है यह शुक्लजी की इतिहास दृष्टि है जो तर्क,

विश्लेषण और लोकमगल की भावना पर आधारित है वे हर प्रकार की मानसिक गुलामी से अपने इतिहास को स्वतत्र रखना चाहते हैं साहित्य की पहचान और परख के लिये उन्होने भारतीय दृष्टि विकसित करके, उसे अपनाने पर बल दिया है उनकी राय मे 'हमे अपनी दृष्टि से दूसरे देशो के साहित्य को देखना होगा दूसरे देशो की दृष्टि से अपने साहित्य को नही "

जहा तक प्रासगिकता का प्रश्न है, शुक्ल जी आज भी हमारे लिये कई अर्थों मे प्रासगिक हैं स्वाधीनता के बाद हिन्दी साहित्य मे पश्चिम की अधी नकल का जो खुल आम आयात हो रहा है, जिसमे हमार सोच, सस्कृति और साहित्य पर पतनशील, साम्राज्यवादी मूल्य हावी हो रह का शुक्ल जी न तक सगत विरोध किया है उन्होने चीजो को देखन परखने की एक भारतीय दृष्टि का विकास किया था उसे आज के सदर्भ मे और भी अधिक विकसित करने की आवश्यकता है और साथ ही उस आधार की पतनशील मूल्य दृष्टि पर भी आघात करन की जरूरत है

2 शुक्ल जी ने अपनी आलोचना-पद्धति का स्वतत्र विकास किया है जहा से भी उ हे श्रेष्ठ मिला है उसे उन्होने ग्रहण किया है अपने कुछ निब धों म उन्होन मैथ्यू आर्नोल्ड की तक पद्धति अपनाई है लकिन यहां भी विश्लषण दृष्टि उनकी अपनी निजी है शुक्ल जी कोरे आलोचक नही हैं, वे साहित्य के साथक प्रयोजन मे विश्वास रखते हैं उनका साहित्य राष्ट्रीय मुक्ति का साहित्य है, जो मथ्यू आर्नोल्ट के वशधरो के विरुद्ध है

3 आपका यह प्रश्न बिल्कुल सत्य है 20वी शताब्दी के हिन्दी साहित्य के ये तीनो साहित्यकार आधार स्तम्भ हैं और धुरी भी अपन अलग अलग क्षेत्र होते हुये भी इन तीनो म बहुत समानतायें हैं तीना राष्ट्रीय मुक्ति के लिय सक्रिय रह साम्राज्यवादी और सामती सस्कृति का विरोध किया वे हर प्रकार के रूढिवाद अधविश्वास जडता, सकीणता और साम्प्रदायिकता के विरोधी है मानव जीवन का वास्तविकता के आधार पर चित्रण इन तीनो क साहित्य का उद्देश्य रहा है इन्होने देशभक्ति और जनवादी साहित्यिक परम्परा का समथन किया है साधारण जन की मुक्ति म तीना की दिलचस्पी है इसलिये आज भी इनका हिन्दी क लाखा पाठको और जनवादी लेखको के लिय महत्व कम नही हुआ है

4 शुक्लजी के बाद की हिन्दी आलोचना की गति और स्थिति ऐसी ही है जसे प्रेमचद के बाद हिन्दी कथा साहित्य की आलोचना कई समानांतर धाराओं में बट गई है शुक्लजी के बाद आने वाले प्रमुख आलोचको मे आ नद दुलारे वाजपेयी

एव नगे द्र आदि मे उन जसी गम्भीरता, व्यापक खोज दृष्टि, सतुलन और भारतीय जन-जीवन को दृष्टि मे रखने वाली परम्परा नही मिलती उनके पास शुक्लजी जसी तीखी, वज्ञानिक तथा विस्तृत जीवन दृष्टि का भी अभाव है बाद के अधिकाश आलोचको का दृष्टिकोण सीमित और एकागी है डा रामविलास शर्मा एव आचाय हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि कुछ अपवाद जरूर हैं ये आलोचक अपनी सीमाओ मे बद होकर रह गय हैं यह खेद का विषय है कि पचास साल व्यतीत होने पर भी हम शुक्लजी के इतिहास से आगे नहीं बढ पाय हैं भक्तिकाल के सम्बन्ध मे शुक्लजी की कमजोरियो को सम्पूण सामाजिक, राजनतिक और आर्थिक परिवेश मे देखने परखन की आवश्यकता आज भी बनी हुई है

सतोष की बात यह है कि पिछले दिनो से शुक्लजी की परम्परा को और अधिक वज्ञानिक तथा तक सगत बनाने के निरतर प्रयास हो रहे हैं वरिष्ठ जनवादी आलोचक डा रामविलास शर्मा निरतर लिख रहे हैं और निश्चय ही शुक्लजी की परम्परा के वे सबस बडे आलोचक-इतिहासकार हैं डा नामवरसिंह न "इतिहास और आलोचना" तथा "छायावाद" म इस सुदृढ किया है प्रो रमेश कु तल मघ प्रो शिवकुमार मिश्र उन आलोचको म है जो जनवादी दष्टिकोण को हि दी साहित्य म निरतर विकास कर रहे हैं इन लोगो ने शुक्लजी की आलोचना पद्धति को वज्ञानिक और क्रातिकारी जनवादी दष्टि प्रदान की है यद्यपि इस दिशा म और भी अधिक काम करने की आवश्यकता है, तथापि मरा विश्वास है कि निरतर प्रयासो के फल स्वरूप आगे अच्छा परिणाम निकलगा

5 मेरी राय मे य दोनो ही शुक्लजी की परम्परा क आलोचक है हालाकि इनकी विचारधाराये अलग अलग हैं प्रेमचद की भाति शुक्लजी की परम्परा बहुत विस्तृत है उसके कई छोर ह आ द्विवेदी ने शुक्लजी की परम्परा को गहरा किया है और डा रामविलास शर्मा ने उसे विस्तार दिया है परम्परा का अथ लकीर का फकीर नही, बल्कि उसे बहुआयामी बना देना है डा शर्मा 'भारत म अग्रेजी राज्य और मार्क्सवाद' के बाद अब 'मध्यकाल' पर लिख रहे हैं य एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं, जो शुक्लजी से बिना जुडे सभव नही है

6 आज लेखको और आलोचको की सख्या बहुत बढ गई है पत्र पत्रिकायें भी बहुत छप रही हैं प्रकाशन अब व्यवसाय बन गया है हि दी राजभाषा है स्कूलो से लेकर विश्वविद्यालयों तक मे अध्ययन अध्यापन हो रहा है शुक्ल जी के समय स आज हि दी अध्यापको की सख्या हजार गुना बढी है इन अध्यापको म अधिकाश कवि हैं अथवा आलोचक क्योकि कवि और आलोचक होना इनके लिए सबस सरल काम है शाटकट के इस युग मे लोग जल्दी से ख्याति और उपलब्धि प्राप्त

करने के चक्कर म लगे रहते हैं इस प्रकार के लोगा का न कोई अध्ययन है और न जीवन दृष्टि ये लोग पारे की भाँति हैं जिस बतन म रख दो, उसका ही रूप ग्रहण कर लेते ह इन दृष्टिहीन और विचार-शून्य लोगो की जमात हिन्दी साहित्य मे अराजकता पदा कर रही हैं बिना पढे लिखे तो पुस्तक समीक्षा ही हो सकती है, गभीर काय नही

हिन्दी म अनक एसे आलोचक भी है जो आलोचना कम को गभीरता से ले रहे हैं इनके नाम गिनाये जायँ तो एक लम्बी सूची बन सकती है

निरतर परिश्रम, भारतीय जन जीवन से आत्मीय सम्बन्ध, वज्ञानिक दृष्टि, गहन अध्ययन इतिहास और युगीन समाज की सही समझ ही इस सकट स उबारने म सहायक हो सकती है आज हमारा शासक वग कला और साहित्य को कमोडिटी बना रहा है साहित्य का जो व्यापारीकरण हो रहा है, उसका भी सगठित विरोध आवश्यक है व्यापार लखक की स्वतन्त्रता और अस्मिता के लिए सबसे अधिक घातक है

आयोजक –सूरज पालीवाल,
सेठ मोतीलाल कॉलेज झुंझनू (राज)

हिन्दी विभाग,
मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ

छोटेलाल शर्मा

“का हो कदब, तू कब बढवा”

(1)

प रामचन्द्र शुक्ल को हिन्दी जगत के सभी छोटे बडे जानते मानते हैं वे कवि, इतिहासकार और चोटी के आलोचक थे उनके निबन्ध हिन्दी साहित्य की अमूल्य निधि हैं हिन्दी जगत से उनका कुछ कुछ परिचय सन् 1903 से प्रारम्भ होता है, जब उन्होने “आनन्द कादबिनी ' के सम्पादन का भार अपने ऊपर ओढा था उनका जन्म सन् 1884 म शारदीय पूर्णिमा के दिन अगोना गांव मे हुआ था प्रकृति-प्रेम उन्हे घुटी मे मिला था उनका अन्म्य आकर्षण उनके लिए निर्णाय था समवयस्क बालक जब गुल्लीडण्डा और आंख मिचौनी जसे खेलो से उबर नही पाये थे तब बालक शुक्ल शाखामृग की तरह पेडो पर उछलते कूदते, नदी नालो की थाह लेते और पहाडो पर चढते उतरते मस्त रहते थे उन्हें पहाडियो पर उभरे तालाबो म जलकेलि का बडा चाव था उनके पिता जब राज्य मे कानूनगो हुए, तो इस मे और चार चाद लग गये बुन्देलखड की चप्पा-चप्पा भूमि को उन्होने नाप रखा था वहा की पहाडियो के पुराने पेड उनके झूला झूलने की आज भी गवाही दे रहे हैं

चरखारी महोपा और राठ की भूमि उनकी पन्दनि को दिन मे आज भी सजोए है वहा की ऐसी कोई चट्टान नही जिसे उसका स्पश पुलक सुनम न हुआ हो यहा के चना मटर और गन्ने के खेत आज भी प्रतीक्षा करते प्रतीत होते है किसान उनके बहुत निकट थे वे निधडक आप बीती इस लेखक को सुनाया करते थे बालक रामचन्द्र प्राय रात भीगे घर लौटते और उगली उठाने पर प्राय कहा करते—"हम आल्ह उदल के तमवारें व हुडिपथ पहाडन पर" ठौर मया म नहि मासन खायो" की महिमा म प्रकृति प्रेम उनम बहुत गहरे उतर चुका था और साथ ही गदराने लगा था लोक प्रेम

बालक "शुक्ल" ने जब नवां वष पार किया, मां ने सदैव के लिए आंखें मूद लीं इससे दिल तो टूटा लेकिन प्रेम व्यापक हो गया उन्होने सब तरह से अपने को प्रकृति की गोद मे छोड दिया, तभी पिता की बदली मिर्जापुर हो गई 'शुक्ल' जी अपनी बाल मडली के साथ रात-रात विन्ध्याटवी का भ्रमण करने लगे दागी की हरीतिमा सवरण करने पर शुक्ल जी प्रकृति की ओर अधिक झुके सपूण भाव के साथ अब यह चिन्मय हो गई व दूर तक चले हुए भरे टीलो के बीच स घूम घूमकर बहते हुए स्वच्छन्द नालो, इधर उधर उभरी बेडौल चट्टानो और रग-बिरग फूलो से गुथी हुई झाडियो म रमने लगे तथा जगल, पहाड, फूल, वृक्षो आदि से बातें करने लगे अब कुत्ते, बिल्ली, खरगोश और मेढके भी उनकी मित्र मण्डली म शामिल हो गए नायब तहसीलदारी के प्रशिक्षण काल म भी व घोडे की पीठ पर बैठ विन्ध्याटवी को छानते तथा वहाँ के प्रपातो और गगा की लहरो के कानों मे गहरी 'कथा' कहते पेड-पौधो स उन्ह बेहद लगाव था उन्होने मथुरा से करील और कदम्ब, उत्तराखण्ड से सफेद, नीले और पीले गुलाब तथा दक्षिण पश्चिम से किस्म-किस्म के फूल पौधो से अपना उपवन सजाया था जिसमे माली की कैंची कभी नही चली और अजस्र प्रस्वेद कभी रुका नहीं यह उपवन भी वन म बदलकर 'वन' हो गया लेकिन राष्ट्रीय एकीभवन का निदशन होकर यह शहर के बाहर था जहा पहले नीबू और बेल के जगल थे और अब बीच म दूधिया रग का 'शुक्ल सदन'

दिनचर्या की साथ चला फूल पत्तियो की सेवा को अर्पित थी, न कोई चर्चा अर्चा और न मिलना जुलना वे सबको पानी देते, बातें करते, कुशल पूछते और कालिदास की शकुन्तला के भरे पूरे मन स ओर मगल पाठ से सबका प्रोक्षण करते पत्ते भी हिल डुलकर उन्ह उत्तर देते इशारे इगित करते जिसे वे समझते बहलाते, मुस्कराते यह सब विस्मयजन्य था आगे-आगे कूदती फुदकती बारह-बारह बिल्लियां, पीछे घोनी खीचते-नाचते तीन तीन कुत्ते और बीच म धन्य मु हलगा की शोभा यात्रा शुक्ल जी सेवा लीन सब में बटे, सब से जुडे, अन्दाज वही 'सूर' का 'जसादा मन अभिलाष करें, आत्म-लीन हो कदब से कपोल सहलाते और मुह सटाकर पूछते– 'का हो कदब, तू कब बढ़बा"

प्रकृति भी अनुदार बने रहती ! विस्तृत, स्वस्थ और समृद्ध जीवन दर्शन की नीव पड़ी स्वतन्त्रता, समता और भ्रातृभाव का संचार हुआ तथा आत्म-सम्मान और लोक प्रेम का संक्रमण मन में चिन्तनशीलता घर कर गई और उदारता असीम हो चली मिर्जापुर का जिलाधीश विद्वान अंग्रेज शुक्ल जी के मोती जैसे अक्षर और मानचित्र की कलात्मक रेखाएं देखकर अत्यन्त प्रभावित हुआ और इनका नायब तहसीलदारी के लिए मनोनयन हो गया पिता खुशी से बेकाबू हो गए लेकिन पुत्र पर कोई असर नहीं घुड़सवारी में प्रथम स्थान प्राप्त किया एक दिन प्रात उसने घर बुलवाया यह क्या ! चेहरा तमतमा आया और तन बदन में आग लग गई

स्वाभिमान सत्ता की बराबरी में समठोकर खड़ा हो गया उस समय शुक्ल जी किशोर थे, आयु लगभग उन्नीस वर्ष एक दो रचनाएं भी छप चुकी थी मन उत्तेजित एक लहर आए, एक जाए कि कोई अंग्रेज किसी हिन्दुस्तानी का, कोई जिलाधीश किसी विद्वान को अपने घर बुलाए—उल्टी गंगा बहुत काबू किया लेकिन धीरज जवाब दे गया तुरन्त त्याग पत्र लिख दिया बूढ़े चपरासी ने बहुत समझाया, पिता ने डांटा-डपटा पत्नी बहुत गिड़गिड़ाई, सब बेकार, कान पर जूं तक न रेंगी कदम वापस न हुआ और विद्वत्व अपने बेढब व्यवहार के लिए हाथ मलकर रह गया इधर किशोर शुक्ल को दो बच्चों और पत्नी के साथ गांव लौटना पड़ा, धान और साग खाने तथा फटेहाल जीवन जीने के लिए गांव में जाकर भी चैन की सांस न ली क्योंकि लोक साधना हुत हुई थी प्रदर्शन पं गंध सब के लिए कमर कस ली और 'भारत को क्या करना चाहिए' (What has India to do) लेख लिखा जो 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में छपा, जिसे पढ़कर विद्वत्व के रोंगटे खड़े हो गए और वह आग बबूला हो गया पिता को बुलाकर सचेत किया—'यह संभालिए, आपका लड़का क्रांतिकारी हो रहा है"

" शुक्ल जी का विवाह बारह वर्ष की अवस्था में हो गया था घर में विमाता का आतंक था कलह हुआ और शुक्ल-दम्पत्ति छिटककर दूर हो गया किराए की एक कोठरी ले ली और पन्द्रह रुपये के ट्यूशन पर जीवन चलने लगा स्वाभिमान स्वावलंबी हो गया लेकिन यह मनोमालिन्य पिता के वात्सल्यमय आंसुओं की धार में शीघ्र ही बह गया बेटा बहू घर लौट आये उन्होंने अपनी विमाता को राम के सदृश अधिकाधिक स्नेह दिया आखिर थे भी तो रामचन्द्र ही न ग्लानि धुल पुछकर साफ हो गई

शुक्ल जी की उदारता भी असीम थी बनारस में उनके घर प्रतिदिन लगभग पच्चासी आदमियों का भोजन बनता था एक भण्डारी और तीन सेवक सदा रहते थे

इस वृहद् परिवार म भी तीन भाइयो के परिवार के साथ मॅझो और मॅझोना के विपन्न सगे सम्बन्धी भी शामिल थे साले भी यही रहते थे, इसके अतिरिक्त आठ दस विद्यार्थी भी जो दूर दराज से हिन्दू विश्वविद्यालय का नाम सुनकर आते थे उनके लिए फीस वस्त्र की व्यवस्था भी करनी पडती थी निर्वाह का पतला आधार अधिक बोझ से चरमरा गया, था भी क्या वतन के ढ़ाई सौ रुपय और रायल्टी मात्र दो बहिनों और परिवार की नौ पुत्रियो के विवाह का भार अलग अजीब ऊहापोह, आखिर भार से शेष भी विचलित हो गये मालवीय जी क मना करने पर भी अलवर नरेश के यहां साहित्य-सचिव का पद स्वीकार कर लिया एक दिन फिर अघग्नि घटा नरेश ने आधी रात के लगभग दूरभाष पर 'राम चरित मानस" की एक अर्द्धाली का अर्थ पूछा शुक्ल जी का आत्मसम्मान इन सामाजिक पठारा के विरुद्ध एक बार फिर जाग उठा पलक मारते सामन्तीवृत्ति को लात मार दी और शाम की गाडी से काशी वापस आ गए फिर क्या था, अनेक बुलावे आए, मन्त्री आए नरेश आए तीन सहस्र मुद्राओं का प्रलोभन आया, लेकिन सब को खाली हाथ लौटना पडा न विदेशी शासन सत्ता झुका पाई और न देशी सामती सम्पत्ति-सत्ता स्वाभिमान को धकेलकर समझौता उनके स्वभाव मे न था

महामना मालवीयजी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति थे और शुक्लजी हिन्दी विभाग के प्राध्यापक और अध्यक्ष हिन्दी विभाग म एक स्थान रिक्त हुआ कुलपति ने एक पुराने व्यक्ति की नियुक्ति का प्रस्ताव किया शुक्लजी उनकी योग्यता और क्षमता से परिचित थे, चट बोले ' अगर पडिहाई करानी हो तो अवश्य नियुक्त कर लिया जाय और अगर हिन्दी पढवाना हो तो अमुक—ठीक रहेगा " भला शुक्लजी उन "सचिव बैद गुरु" की पक्ति म कैसे नाम लिखवाते जो "प्रिय बोलहिं भय आस" मालवीयजी को सच्चाई के सामने झुकना पडा

"शुक्ल ' जी को हिन्दी से विशेष स्नेह था और हिन्दी लेखको के प्रति असीम सम्मान भारतेन्दु मण्डल के एकमात्र अवशेष "प्रेमघन" जी की एक झलक मात्र के लिए वे अपने साथियो सहित तीन घन्टे तक सडक पर घूमते रहे थे धीरे धीरे सम्पर्क बढा और प्रवश हो गया एक दिन सभा उपस्थित सज्जनो के बीच 'प्रेमघन" जी ने एक ऐसे दोहे की रचना की बात कही जो विशेष निमन्त्रण पत्र के लिए उपयुक्त हो सके शुक्लजी वह दोहा बनान म सफल रहे सबने दातो तले अगुली दबाई शुक्लजी की सब पर धाक जम गई वह प्रतिभा और वह श्रद्धा !

"शुक्ल' जी क मन का पाट गहरा होने की अपेक्षा चौडा अधिक था वे व्यक्तिवादी नही थे उनके समाज या लोक म व्यक्ति कहीं न कही मौजूद अवश्य था इसलिए

ये लोक साधक थे उन्हें दीन दुखी अधिक प्रिय थे वे किसानों से घण्टों दुख की बातें किया करते थे एक नागर जन ने महुए का नाम सुनकर नाक-भौं सिकोड़ी, तो शुक्लजी ने ऐसी कटूक्ति की कि उनकी जीभ तालू से चिपक कर रह गई और बगलें झाँकने लगे उन्हें ग्राम्य जीवन से भी कम मोह न था "निराला' जिस प्रकार 'भिक्षुक' को अपने अन्तस्तल के अमृत से सींच कर संघर्ष के योग्य बनाते हैं, शुक्लजी भी 'कामये दुःखतप्तानाम प्राणिनामार्तिनाशनम्' की प्रतिमूर्ति हैं वे 'व्यक्तिवाद' और 'कल्पना' के इस युग में इस लोक संस्कार को फलता-फूलता देखना चाहते हैं, इसलिए धीरे-धीरे सहलाकर, प्रतिष्ठापित कर यही पूछा करते हैं—"का हो कदब तू कब बढ़वा"

(3)

शुक्लजी की दृष्टि में काव्यादर्श भी लोकाराधना से भिन्न नहीं है, इसलिए काव्य उनके लिए भावयोग है जिसमें व्यक्ति अपने अहं से सम्बन्धित भावों से ऊपर उठकर लोक सामान्य की भाव भूमि पर आ जाता है परिणाम स्वरूप हमारे मनोभाव इस विस्तार-प्रसार के सहारे शुद्ध हो जाते हैं और शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह सम्भव हो जाता है हृदय पहले प्रकृत दशा में आता है और तदनन्तर उच्च या मूल्यपरक भूमि की ओर उन्मुख होकर विश्वरूप हो जाता है इसलिए सच्चा कवि वही कहा जा सकता है जिसे लोक हृदय की पहचान हो जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच उसे देख पहचान सके इसी से जगत के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य का सामंजस्य घटित स्थापित होता है यहाँ भीतर बाहर का कोई भेद नहीं रह जाता

लोक हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम ही रस दशा है यही हृदय की मुक्तावस्था है इस विषय में शुक्लजी महापात्र विश्वनाथ से सहमत हैं उन्होंने सत्वोद्रेक के साथ आत्मा या चित्त के प्रसार विस्तार को अधिक महत्व दिया है इसी से मनोविकार कलात्मक रूप ग्रहण करते हैं इसके लिए आवश्यक है कि आलंबनत्व धर्म (मूल्य) का साधारणीकरण माना जाय और आश्रय के साथ तादात्म्य यही रस की पूर्ण स्थिति है अन्य स्थितियाँ मध्यम कोटि की हैं जिनमें आश्रय और पाठक अनुभूति में लीन न होकर केवल भाव व्यंजना की स्वाभाविकता एवं उत्कर्ष का अनुमोदन करते हैं शील द्रष्टा भर रहते हैं रस को उन्होंने दर्शन के तटस्थ तत्वों की भँवर से भी बचाया है उन्होंने बिना इस बात की चिन्ता किए कि उन्हें भवकु से भी समीकृत किया जा सकेगा, प्रत्यक्ष, स्मृति और कल्पना को रसानुभूति के विभावन व्यापार में स्वीकार कर लिया है रस वास्तव में प्रत्यक्ष का उदात्त और अवदात रूप है स्मृति में

इस वृहद् परिवार म भी तीन भाइया के परिवार के साय मेंहो और प्रगौना के विपन्न सगे सम्ब धी भी शामिल थे साले भी वही रहते थे, इसके अतिरिक्त आठ दस विद्यार्थी भी जो दूर-दराज से हिंदू विश्वविद्यालय का नाम सुनकर आते थे उनके लिए फीस वस्त्र की व्यवस्था भी करनी पडती थी निर्वाह का पतला आधार अधिक बोझ से चरमरा गया, था भी क्या वेतन में डेढसो रुपये और रायल्टी मात्र दो बहिनों और परिवार की नौ पुत्रियो के विवाह का भार अलग अजीब ऊहापोह, आखिर भार से शेष भी विचलित हो गये मालवीय जी क मना करने पर भी अलवर नरेश के यहा साहित्य सचिव का पद स्वीकार कर लिया एक दिन फिर अग्नि घटा नरेश ने आधी रात के लगभग दूरभाष पर "राम चरित मानस" की एक अर्द्धाली का अर्थ पूछा शुक्ल जी का आत्मसम्मान इन सामाजिक पठारा के विरुद्ध एक बार फिर जाग उठा पलक मारते सामन्तीवृत्ति को लात मार दी और शाम की गाडी से काशी वापस आ गए फिर क्या था, अनेक बुलावे आए, मन्त्री आए नरेश आए तीन सहस्र मुद्राओं का प्रलोभन आया, लेकिन सब को खाली हाथ लौटना पडा न विदेशी शासन सत्ता झुका पाई और न देशी सामती सम्पत्ति सत्ता स्वाभिमान को धकेलकर समझौता उनके स्वभाव म न था

महामना मालवीयजी हिंदू विश्वविद्यालय के कुलपति थे और शुक्लजी हिंदी विभाग के प्राध्यापक और अध्यक्ष हिन्दी विभाग मे एक स्थान रिक्त हुआ कुलपति ने एक पुराने व्यक्ति की नियुक्ति का प्रस्ताव किया शुक्लजी उनकी योग्यता और क्षमता से परिचित थे, चट बोले ' अगर पढ़िहाई करानी हो तो अवश्य नियुक्त कर लिया जाय और अगर हिन्दी पढवानी हो तो अमुक—ठीक रहेगा " भला शुक्लजी उन "सचिव बैद गुरु" की पक्ति मे कसे नाम लिखवाते जो "प्रिय बोलहि भय आस" मालवीयजी को सच्चाई के सामने झुकना पडा

' शुक्ल ' जी को हिन्दी से विशेष स्नेह था और हिंदी लेखको के प्रति असीम सम्मान भारते दु मण्डल के एकमात्र अवशेष "प्रेमघन" जी की एक झलक मात्र के लिए वे अपने साथियों सहित तीन घ टे तक सडक पर घूमते रहे थे धीरे धीरे सम्पर्क बढ़ा और प्रवेश हो गया एक दिन सभा उपस्थित सज्जनो के बीच 'प्रेमघन" जी ने एक ऐसे दोहे की रचना की बात कही जो विशेष निम त्रण पत्र के लिए उपयुक्त हो सब शुक्लजी यह दोहा बनान म सफल रहे सबने दांतो तले अगुली दबाई शुक्लजी की सब पर धाक जम गई वह प्रतिभा और यह श्रद्धा !

'शुक्ल जी क मन का पाट गहरा होने की अपेक्षा चौडा अधिक था वे व्यक्तिवादी नहीं थे उनके समाज या लोक म व्यक्ति कही न कहीं मौजूद अवश्य था इसलिए

वे लोग साधक थे उन्हें दीन दुखी अधिक प्रिय थे वे किसानों से घण्टा दुख की बातें किया करते थे एक नागर जन ने महुए का नाम सुनकर नाक भौं सिकोड़ी, तो शुक्लजी ने ऐसी कटूक्ति की कि उनकी जीभ तालू से चिपक कर रह गई और बगले झाकने लगे उन्हें ग्राम्य जीवन से भी कम मोह न था "निराला" जिस प्रकार 'भिक्षुक' को अपने अन्तस्तल के अमृत से सींच कर समय के योग्य बनाते हैं, शुक्लजी भी 'कामये दुःखतप्तानाम प्राणिनामर्तिनाशनम्' की प्रतिमूर्ति हैं वे व्यक्तिवाद' और 'कल्पना' के इस युग मे इस लोक संस्कार को फलता-फूलता देखना चाहते हैं, इसलिए धीरे-धीरे सहलाकर, प्रतिष्ठापित कर यही पूछा करते हैं—"का हो कदम तू कब बढ़बा "

(3)

शुक्लजी की दृष्टि मे काव्यादर्श भी लोकाराधना से भिन्न नहीं है, इसलिए काव्य उनके लिए भावयोग है जिसमे व्यक्ति अपने अहं से सम्बंधित भावों से ऊपर उठकर लोक सामान्य की भाव भूमि पर आ जाता है परिणाम स्वरूप हमारे मनोभाव इस विस्तार-प्रसार के सहारे शुद्ध हो जाते हैं और शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बंध की रक्षा और निर्वाह सम्भव हो जाता है हृदय पहले प्रकृत दशा मे आता है और तदनंतर उच्च या मूल्यपरक भूमि की ओर उन्मुख होकर विश्वरूप हो जाता है इसलिए सच्चा कवि वही कहा जा सकता है जिसे लोक हृदय की पहचान हो, जो अनेक विशेषताओं और विचित्रताओं के बीच उसे देख पहचान सके इसी म जगत के मार्मिक पक्षों का प्रत्यक्षीकरण करके उनके साथ मनुष्य का सामंजस्य घटित स्थापित होता है यहां भीतर बाहर का कोई भेद नहीं रह जाता

लोक हृदय मे हृदय के लीन होने की दशा का नाम ही रस दशा है यही हृदय की मुक्तावस्था है इस विषय म शुक्लजी महापात्र विश्वनाथ से सहमत हैं उन्होंने सत्वोद्रेक के साथ आत्मा या चित्त के प्रसार विस्तार को अधिक महत्व दिया है इसी से मनो विकार कलात्मक रूप ग्रहण करते है इसके लिए आवश्यक है कि आलंबनत्व धर्म (मूल्य) का साधारणीकरण माना जाय और आश्रय के साथ तादात्म्य यही रस की पूर्ण स्थिति है अन्य स्थितियां मध्यम कोटि की है जिनम आश्रय और पाठक अनुभूति म लीन न होकर केवल भाव व्यंजना की स्वाभाविकता एव उत्कर्ष का अनुमोदन करते हैं, शील द्रष्टा भर रहते हैं रस को उन्होंने दर्शन के तटस्थ तत्वान्वेषी भवर से भी बचाया है उन्होंने बिना इस बात की चिन्ता किए कि उन्हें यशकू से भी समीकृत किया जा सकेगा, प्रत्यक्ष, स्मृति और कल्पना को रसानुभूति के विभावन व्यापार में स्वीकार कर लिया है रस वास्तव म प्रत्यक्ष का उदात्त और अवदात रूप है स्मृति में

इतिहास रहता है और कल्पना में सम्भाव्य असम्भाव्यता   इससे मन का विसर्जन और निःसंगता का उद्रेक हो जाता है रस की आनन्दात्मकता भी लोक हृदय में लीन होने के कारण है   शोक के स्थायीभाव वाले रस का नाम करुण इसलिए ही है कि वह लोक व्यापक है यह रागात्मकता ही आत्मा का व्यापक रूप है

काव्य भेद की कसौटी भी लोक हृदय ही है   उन्होंने आनन्द की साधनावस्था के निदर्शन प्रबन्ध को श्रेष्ठ माना है क्योंकि इसमें लोक प्रवृत्ति को परिचालित करनेवाला प्रभाव मौजूद रहता है जो पाठकों और श्रोताओं के हृदय में भावों की स्थायी प्रेरणा उत्पन्न कर सकता है इसमें विरोधों का सामंजस्य ही घटित नहीं होता है, कर्मक्षेत्र का सौंदर्य भी खिल उठता है प्रबन्ध काव्य के प्रधान पात्र में कोई मूल प्रेरक भाव (मूल्य) या बीज भाव रहता है जिसकी प्रेरणा से घटना चक्र चलता है और अनेक भावों के स्फुरण के लिए जगह बनती जाती है यही लोक मंगल की कुंजी है वे 'भाव' में वृत्त और वृत्ति का सामंजस्य देखते थे इसलिए उन्हें उत्पाद्य फीका लगता है   वैसे प्राचीन वृत्त में सत्य मूलक सजीवता और मार्मिकता दूध की तरह जुड़े रहते हैं अतीत की दूरी हमारी दृष्टि को शुद्ध कर देती है जो जीवन का नित्य और प्रकृत स्वरूप है   यही "नदतिक अन्तराल' या 'मानसिक अंतराल" की भूमिका है   यह भाव ही केन्द्र है इसके बिना वक्रता की प्रधानता देखकर उसे सूक्ति या सुभाषित कहा है   नवोन्मेष शालिनी कल्पना को उन्होंने असम्भाव्य-सम्भाव्यता का उत्पादक नहीं माना है   उसे वे स्मृत्याभास के बिना नहीं छोड़ते हैं   तभी वह मानव जीवन की चिरकाल से चली आती हुई अखण्ड परम्परा के साथ तादात्म्य करा सकती है और आत्मा के शुद्ध स्वरूप की अखण्डता, नित्यता और व्यापकता का आभास दे सकती है आनन्द की सिद्धावस्था की भूमि अत्यंत संकुचित होने के कारण ही उन्हें शृंगार के स्फुट मुक्तक और छायावाद प्रभावित नहीं करते हैं

शुक्लजी की प्रकृति भी इसी भाव से भावित है वे उसके आलंबन रूप की प्रतिष्ठा के कायल हैं और उसके संश्लिष्ट रूप के प्रशंसक इसके चिरसाहचर्य के कारण ही बिंब ग्रहण की प्रक्रिया पूर्ण होती है और सीधे सादे सामान्य दृश्यों में भी माधुर्य आ जाता है इसमें अंग्रेजी रोमानी कवियों का 'प्रकृति की ओर लौटो' सम्बन्धी स्वतन्त्रता और समता का भाव भी मौजूद है   जहाँ भी कवियों ने प्रकृति पर अपने भावों का आरोप आरम्भ किया है, वहीं उन्होंने ऐसी उक्तियों को काव्य के क्षेत्र से बहिष्कृत कर दिया है इस प्रकार प्रकृति-रति पराकोटि को पहुंचकर प्रकृति रस में परिगणित हो गई है

इस प्रकार हम देखते हैं कि लोक भूमि का अर्थ उन अर्थ भूमियों से है जो रागात्मिका प्रकृति के भीतर होती हैं इसका सम्बन्ध हृदय के भीतरी मूल देश से है—

उसकी सामान्य वासनात्मक सत्ता से, जिसे चाम्स्की "जातीय अन्त प्रज्ञा" के नाम से कहते हैं और भाषा के क्षेत्र में यूनिवर्सल की रट लगाए हैं। वासना वंशानुक्रम से चली आती हुई परम्परा का मनुष्य की अन्त प्रकृति में निहित सचय है। हम सभी भावों के मूल और आदिम रूपों तक जा सकेंगे जब इससे समृद्ध होंगे और तभी वे मूर्त और गोचर बन पाएँगे। आज की सभ्यता ने इसे चरना शुरू कर दिया है और व्यक्तिवाद बनावाद तथा परपरावाद ने छेंकना पूरा पूरा काँटों से रूँध चुका है। शुक्ल जी चाह भरी दृष्टि इस पर डाल कर यही कहते, पूछते हैं—'का हो बदर, तू कब बढवा"

12, अरविन्द निवास,
वनस्थली विद्यापीठ, वनस्थली (राज)